सुबह होने तक

कामतानाथ

मेरे पास अधिक समय नही है। यही कोई छ-सात घटे। बस। कल सुबह सूर्य की पहली किरण के साथ मुझे फाँसी दे दी जायेगी। हो सकता है, सूर्य उस समय तक न भी निकले। मुझे पता नही। मेरा ख्याल है, फाँसी सुबह चार बजे दी जाती है। यह चार बजे का समय क्यो निश्चित किया गया है, इसका कारण बहुत सोचने पर भी, मै नही खोज सका। हो सकता है, चार बजे का कोई महत्व हो। वैसे यह प्रश्न किसी दूसरे समय के लिए भी लागू होगा। खैर।

इस समय मुझे कैसा लग रहा है, यह समझने के लिए आपको मेरी स्थिति में होना पडेगा। यो ससार मे किसी भी चीज से मुझे मोह नही रह गया है। परन्तु जिन्दगी से तो मोह होता ही है। जीना, सिर्फ जीवित रहना ही, अपने आप मे एक बडा रोमाच है। वैसे मुझ-जैसे व्यक्ति का जीवित रहना ससार के लिए या किसी और के लिए कोई महत्व की बात नही। और मैं ही क्यो, ऐसे कितने ही और लोग होगे। इस समय, इसी क्षण, जब मैं यह सब सोच रहा हूँ, कितने ही लोग इस

ससार से अपना नाता तोड रहे होगे। उनके बारे में कौन जानता है? कौन सोचेगा उनके बारे मे? और यदि वे नही मरेंगे तो क्या ससार का इतिहास बदल जायेगा? हो सकता है दो-एक उनमे ऐसे हो। परन्तु मैं उनकी बात नही कर रहा। फिर भी कोई मरना नही चाहता। मैं भी नही चाहता। वैसे मुझे किसीने यह सूचित नही किया है कि कल मुझे फाँसी लगेगी। लेकिन मैं जानता हूँ। जेलवालो के व्यवहार से मुझे आभास हो गया है। और कल नही लगेगी तो परसो लगेगी। या फिर दो-चार दिन बाद। सजा, फाँसी की सज़ा, मुझे मिल चुकी है। मर्सी अपील भी खारिज हो गयी होगी। होनी ही थी। मेरे कौन बच्चे है जो अनाथ हो जायेगे? या पत्नी है जो विधवा हो जायेगी? किस बात पर मेरी अपील मजूर होगी? फिर भी कभी-कभी मुझे लगने लगता है कि जेलवालो के व्यवहार मे यह जो परिवर्तन हुआ है, यो ही हो। मेरी अपील मजूर हो गयी हो। या अभी उसका जवाब ही न आया हो। मगर यह मेरी खामखयाली है। कल मुझे निश्चित ही फाँसी लग जायेगी। मगर कोई दुर्घटना न हुई तो। आप पूछेगे, कैसी दुर्घटना? हो सकता है, सुबह तक कोई भयानक भूकम्प आ जाये और फिर न यह जेल रहे और न जेल-अधिकारी। या फिर जो जल्लाद मुझे फाँसी देने के लिए बुलाये गये है—मुझे पता है, उन्हें दूसरे जेल से बुलाया जाता है और जेल-अधिकारियो की देखरेख मे उनका खाना-पीना, उठना-बैठना, सोना-जागना होता है, ताकि ऐन मौके पर वे स्वस्थ और सही-सलामत रहे। इसीलिए एक जल्लाद की जगह दो बुलाये जाते है—उनकी मृत्यु हो जाए। या फिर सुबह जो मैजिस्ट्रेट फाँसी दिलवाने के लिए आएगा, रास्ते मे उसकी किसी दुर्घटना मे मृत्यु हो जाए। या जेल मे विद्रोह हो जाए और सारे कैदी भाग निकले, मैं भी। या रातो-रात कुछ ऐसी घटना हो जाए कि सरकार स्वय कैदियों की फाँसी की सजा माफ करके उन्हे उम्र-कैद दे दे। या फ्रन्ट पर लड़ने भेज दे। या केवल यही हो कि जिस कोठरी मे मैं बन्द हूँ उसके ताले की चाभी खो जाए और ताला तोडे न

टूटे और फाँसी का समय निकल जाए। मैंने सुना है, फाँसी का समय निकल जाने के बाद मुल्जिम को फाँसी नहीं दी जाती। शायद यह सही भी है।

मगर यह सब कुछ नही होगा। मैं जानता हूँ। यह केवल मेरी खामखयाली है कि शायद ऐसा कुछ हो जाए और मैं फाँसी पर चढने से बच जाऊँ। जिन्दगी के मामले मे मनुष्य कितना स्वार्थी होता है! सौ आदमियो को मारकर भी वह जिन्दा रहना चाहता है। सौ क्यो, लाख को मारकर भी जिन्दा रहना चाहता है, मैं भी चाहूँगा।

क्यो चाहूँगा? मुझे पता नही। मैं जानता हूँ, आज नही मरूँगा तो कल मरूँगा। दस दिन बाद। दस महीने बाद। दस या बीस वर्ष बाद। फाँसी से बच जाऊँगा तो किसी बीमारी से मरूँगा। हैजा, बुखार, कैन्सर, हृदयरोग या और किसी बीमारी से। न बीमारी सही, वृद्धावस्था से ही मर जाऊँगा। या फिर किसी दुर्घटना से मरूँगा। जलकर, डूबकर, रेल या मोटर के नीचे आकर। या फिर किसी और तरह। मरने के तो कितने ही तरीके होते हैं। आज गौर करता हूँ तो सोचकर आश्चर्य होता है कि आदमी कितनी तरह से मर सकता है। कितनी तरह की बीमारियाँ हैं जिनके मै नाम भी नहीं जानता। ट्यूमर, टेटनस, गैगरीन, अल्सर…कितने विचित्र प्रकार के मर्ज होते हैं! टी बी और टी बी. के अनेक प्रकार। दुर्घटनाएँ भी कितनी प्रकार की हो सकती हैं! सीढी से गिरकर या वैसे ही गिरकर कितने लोग मर जाते हैं! एक और तरीका है मरने का, मैं भूल ही गया था। हत्या और फिर आत्महत्या। आत्महत्या लोग क्यो करते हैं? मुझे नही मालूम। लेकिन यह एक अच्छा विषय है सोचने के लिए। लोगो ने सोचा भी होगा। शोध किये होगे। पुस्तके लिखी होगी।

आप जानते है, फाँसीवाले कैदियो को मिट्टी के बर्तनो मे खाना दिया जाता है? जानते हैं क्यो? इस डर से कि धातु के बर्तनो की सहायता से कही वे आत्महत्या न कर ले, शायद कुछ लोग ऐसे होते हैं।

मैं उनमे से नही हूँ। मुझे तो यदि ज़हर भी इस समय मिले तो मैं नही खाऊँगा। मेरे लिए ज़िन्दगी का एक-एक पल, क्षणाश भी कीमती है। मैं कतई मरना नही चाहता।

लेकिन फिर वही प्रश्न मेरे सामने आता है। इस तरह नही तो किसी और तरह मरूँगा। अन्तर केवल इतना होगा कि समय का कुछ और हिस्सा, कुछ दिन, महीने या वर्ष मुझे जिन्दा रहने के लिए और मिल जायेगे। उसके बाद? एक समय आयेगा जब मुझे मरना ही होगा।

शायद मैं बहुत बेकार की बात कर रहा हूँ। आप मेरी जगह होते तो आप भी करते। आप क्या सोचते है? मुझे इस समय आराम से लेटकर सोना चाहिए या गाना गाना चाहिए। शायद आप कहेगे, भगवान को याद करना चाहिए। मैं आपको बताना भूल गया। मै नास्तिक हूँ और मुझे खुशी है कि इस समय भी जब मुझे कुछेक घटो बाद फाँसी लगनी है, मै अपने विचारो से डिगा नही हूँ। मुझे भगवान नही याद आ रहे। या मृत्यु के बाद जीवन जैसी मूर्खतापूर्ण कल्पना मैं नही कर रहा हूँ।

बस, मैं एक बात जानता हूँ कि मैं मरना नही चाहता। कोई क्यो मरना नही चाहता? या कोई क्यो मरना चाहता है? मै समझता हूँ, दोनो प्रश्नो का उत्तर एक ही है। वैसे मै अधिक पढा-लिखा नही हूँ। परन्तु फिर भी मुझे लगता है, दोनो प्रश्नो के पीछे केवल एक आकाक्षा काम करती है। अपने व्यक्तित्व को दूसरो दवारा महसूस कराने की आकाक्षा। यदि मनुष्य को यह विश्वास हो जाए कि उसके मरने के बाद भी लोग उसे कुछ इस तरह याद करेगे कि उसका व्यक्तित्व उनके बीच बना रहे तो शायद उसके लिए मृत्यु की पीडा कुछ कम हो जाएगी।

लेकिन मेरे जीवन मे ऐसा क्या है जिसको लोग याद करेंगे? दो-चार लोगो को छोडकर शायद कोई यह भी बात नही करेगा कि मुझे फाँसी हो गयी।

शायद इसीलिए मैं चाहता हूँ, आपको सब बता दूं। अपनी इस जिन्दगी के बारे मे। जिन्दगी के अट्ठाईस वर्षों के बारे मे। अट्ठाईस नही, सत्ताईस वर्ष, दस महीने और आज नौ तारीख है न, सत्रह दिनो के बारे मे।

मैने हत्या की है, यह आप समझ गये होगे। क्यो हत्या की है? लेकिन नही, इस तरह नही। मै सोचता हूं शुरू से ही शुरू करूं। या बीच से? मैने फिल्मो मे देखा है, उपन्यासो मे भी पढा है कि लोग बात बीच से शुरू कर देते है और तब पीछे की बात करते है। शायद फ्लैश बैक कहते है इसे। कभी-कभी बात अत से भी शुरू की जाती है और तब लेखक धीरे-धीरे करके शुरू की ओर बढता है। लेकिन मैं लेखक नही हूं। इसीलिए मुझे कठिनाई हो रही है। मैं इस तरह की कोई बात करूँगा तो उसीमे उलझ जाऊँगा। इसीलिए मै सोचता हूँ, शुरू से ही शुरू करूँ। मगर कहाँ से? इस शुरू का भी तो कोई शुरू होगा।

अच्छा तो जीवन की सबसे पुरानी घटना जिसका स्मरण आज भी मेरे मस्तिष्क मे ताजा है, उसीसे शुरू करता हूँ।

उस समय मेरी आयु छ-सात वर्ष रही होगी। मैं स्कूल नही जाता था। घर ही पर एक अधेड उम्र के मास्टर साहब मुझको पढाने आते थे, जो मुझे अग्रेजी, हिन्दी और हिसाब सिखाते थे। एक दिन शाम को पढाते समय उन्होने मुझसे 'गूज' शब्द के मायने पूछे। मैंने कहा—चूहा।

इसपर उन्होने मेरे एक झापड लगाया और दुबारा उसी शब्द के अर्थ बताने को कहा।

मैंने दुबारा कहा—चूहा।

इसपर उनको अधिक गुस्सा आ गया। क्योकि मैंने दुबारा भी बिना कुछ सोचे ही उत्तर दे दिया था। पता नही क्यो, मुझे विश्वास था कि

मैं सही बता रहा हूँ और उन्होने मुझे दुबारा झापड लगाया। इस बार काफी ज़ोर से। मैं रोया नही। बल्कि मैंने उन्हें गाली दी।

—साले, तुम्हारा सिर फोड़ दूंगा। मैने कहा।

इसपर वह हतप्रभ रह गये। मुझे घूरते रहे। फिर बोले—क्या कहा तुमने? शायद उन्होने जो सुना था, उसपर उन्हे विश्वास नहीं हो रहा था।

—अभी बताता हूँ, जाना नही। मैंने कहा और बैठक से बाहर निकलकर ऊपर चला आया।

माँ रसोई मे खाना पका रही थी। उन्होने मुझे देखा। पूछा—क्या मास्टर साहब चले गये?

मैंने उनकी बात का उत्तर नही दिया और कमरे मे इधर-उधर कोई चीज़ ढूंढता रहा। वह समझी, शायद मै कोई कापी किताब तलाश कर रहा हूँ और पूर्ववत् खाना पकाती रही। तभी मुझे कमरे के एक कोने मे बड़े भाई का क्रीकेट का बल्ला रखा दिखाई दे गया। उसे लेकर मैं सीढियाँ उतर आया और बैठक मे जाकर बल्ला लेकर खडा हो गया। मास्टर साहब भी खडे हो गये थे। शायद वे यह सोच रहे थे कि मेरे हाथ से बल्ला कैसे छीना जाय। तभी पिता आ गये।

प्राय: वह इसी समय आफिस से आते थे और बिना रुके सीधे ज़ीना चढकर ऊपर चले जाते थे। परन्तु आज उन्होने हम दोनो को इस पैतरे में खडे देखा तो रुक गये और कमरे मे चले आये।

मास्टर साहब, जो मेरी ओर बढने को अग्रसर हो रहे थे, अपने स्थान पर रुक गये। मैं भी चुपचाप खडा रहा।

पिता एक क्षण खामोश रहे। फिर उन्होने पूछा—यह क्या हो रहा है?

—बल्ला लेकर यह मुझको पीटने आये हैं। मास्टर साहब ने कहा, मैंने इनसे 'गूज' के मायने पूछे, इन्होने गलत बताया, इसपर मैने इनके एक चपत लगा दी तो यह बल्ला ले आये है मुझे मारने के लिए।

—क्यो बे ? पिता ने मुझसे पूछा ।

मैं चुप रहा ।

—क्या होते हैं 'गूज' मायने ?

मैं फिर भी चुप रहा ।

—बोलता क्यो नही । याद नही करेगा, उसपर मास्टर साहब को मारेगा । सुअर ! उन्होने भी मुझे एक झापड़ दिया ।

मैं खामोश खडा रहा ।

—बताता क्यो नही 'गूज' मायने ?

—हस । मैंने कहा । अचानक मुझे याद आ गया था ।

पिता खामोश हो गये । मास्टर साहब को भी आश्चर्य या शायद दुख हुआ मेरे सही बता देने पर ।

—अभी 'चूहा' बता रहा था । उन्होने कहा ।

पिता ने कुछ कहा नही । मेरे हाथ से बल्ला लेकर ऊपर चले गये । मास्टर साहब आठ-दस मिनट रुके । उसके बाद वह भी चले गये और दूसरे दिन से लौटकर नही आये ।

कुछ दिनो तक मैं ऐसे ही घूमता-फिरता रहा । तब मेरे लिए एक दूसरा मास्टर लगाया गया । मैं आठ वर्ष की आयु तक स्कूल नही गया । इसके पीछे कारण यह था कि मै बहुत कमजोर था ।

जब मैं चार-पाँच महीने का था तभी माँ को टाइफाइड हो गया था। छ महीने तक चला। मुझे भी उनके साथ-साथ चलता रहा। तीन बार रिलैप्स हुआ । एक बार तो माँ मरते-मरते बची । गऊदान तक करा दिया गया उन्हे । परन्तु फिर उनका स्वास्थ्य ठीक हो गया । यदि मर जाती तो शायद यह कहानी आज इस तरह न होती । बहुत सम्भव तो यही था कि मैं भी उनके साथ ही कुछ दिन बाद मर गया होता । परन्तु मैं भी बच गया और माँ भी । माँ का स्वास्थ्य तो खैर फिर पहले जैसा हो गया, परन्तु मेरा स्वास्थ्य जो खराब हुआ तो सदा के लिए खराब हो गया ।

हाँ, तो आठ वर्ष की आयु मे मेरा नाम पास के ही एक स्कूल मे तीसरे दर्जे में लिखा दिया गया। स्कूल अच्छा नही था। परन्तु पास था जिससे मुझे ज्यादा दूर चलना नही पडता था। इसीलिए उस स्कूल मे मेरा नाम लिखाया गया था। वैसे मेरे दोनो बडे भाई तथा मुहल्ले के अधिकतर लड़के दूसरे स्कूल मे पढते थे।

स्कूल मे नाम लिख जाने के बाद भी दो-तीन वर्ष तक मास्टर मुझे घर पर पढाने आता रहा। इसके बाद यह सिलसिला बन्द हो गया। क्योकि घर का खर्च दिन ब दिन बढ रहा था और पिता की सीमित आय मे मुश्किल से ही चल पा रहा था। मास्टर छूट जाने के बाद पिता स्वय मुझे शाम को लेकर बैठते और दो-ढाई घण्टे तक मुझे पुस्तको से उलझाये रहते।

अधिकतर वह मुझे अग्रेजी ही पढाते, विशेषकर ग्रामर।

थर्ड पर्सन सिन्गुलर नम्बर प्रेजेन्ट पर्फेक्ट टेन्स मे हेज लगाता है या हैव? यदि मैं भूल से भी हैज की जगह हैव कह जाऊँ तो मेरी खैरियत नही होती थी।

अक्सर पिता के इस प्रकार मुझे पढाने पर माँ उनपर बिगडने लगती।

—एक तो वैसे ही उसकी तन्दुरुस्ती ठीक नही है, उसपर तुम और पीट-पीटकर उसके बदन मे कुछ लगने नही देते।

परन्तु पिता मुझे पढाने मे कोताही नही करते।

इसपर भी मैं पढने मे तेज़ नही था। जैसे-तैसे ही पास हो जाता। इस पास होने मे स्कूल अधिकारियो का श्रेय ही अधिक था। क्योकि उस स्कूल मे नवें तक शायद ही कोई विद्यार्थी फेल होता था। बल्कि दूसरे स्कूल मे यदि कोई लडका किसी दर्जे मे फेल हो जाता तो उस स्कूल में आकर अगली क्लास मे आसानी से भर्ती हो जाता। स्कूल ही कुछ इस तरह का था वह।

खैर जैसे-तैसे आठवें तक तो मैं ठीक चलता रहा, परन्तु आठवें में मैं छमाही इम्तहान देने के पहले ही बीमार पड गया। फिर वही टाइफाइड। कोई दो-ढाई महीने तक मैं बिस्तर पर पडा रहा।

ठीक हो जने पर डाक्टर ने राय दी कि मुझे एक वर्ष स्कूल से छुट्टी दिलाकर आराम कराया जाय। इस प्रकार मुझे एक वर्ष के लिए बिलकुल फुर्सत मिल गयी। स्कूल से तो नाम कटा ही दिया गया। घर पर भी पिता कभी-कभी ही मुझे पढने के लिए डाँटते-डपटते।

परिणाम यह हुआ कि मैं दिन-भर मुहल्ले के और लडकों के साथ पार्क मे आवारागर्दी करता रहता। पिनिया, गोली और गेद आदि खेलता रहता।

गोली, कचे आदि हमे बाज़ार से दूकान पर मोल मिले जाते। जब कि पिनिया किमी दूकान पर नही मिलती थी। यह एक प्रकार के वृक्ष के फल का बीज होता है जो सम्भवत जहाँ तक मैं समझता हूँ, किसी उपयोग मे नही आता। इसके ऊपर का हरा छिलका उसे पानी मे भिगोकर सडाकर हम निकाल देते और अन्दर मे सफेद, सख्त बीज निकाल लेते। यह बीच मे मोटा और दोनो सिरों पर नुकीला होता है। उसे प्राप्त करने के लिए हमे घर से लगभग पाँच-छ मील कम्पनी बाग जाना पडता था। हम दो-तीन लडको की टोली बनाकर जाते और वहाँ से वृक्षो के नीचे पडे हुए छोटे-छोटे कुछ कच्चे, कुछ पक्के बीज उठा लाते। फिर उन्हे सडाकर साफ करते और कई रगो में उन्हे रगते। कभी-कभी हम दूसरे लडकों से कचे, गोली आदि के बदले मे या फिर पैसे देकर उन्हें प्राप्त करते।

कम्पनी बाग के पास ही इमामबाडा था जिसके बारे मे कहा जाता है कि उसे नवाब आसुफुद्दौला ने अपनी रियासत मे सूखा पडने के दिनो में बनवाया था। उसके बनवाने का सारा काम रात मे होता था। गैस की रोशनी मे। देश मे सूखा पड़ने की वजह से अनाज बहुत महगा हो गया था और बडे-बडे लोगों के पास भी इतना पैसा नही था कि वे अनाज

खरीद सकें। अत: लोग जिसमें बड़े-बड़े रईस शामिल थे रात मे आकर बादशाह के यहाँ नौकरी करते थे और थोडी मेहनत के बदले मे उन्हें सरकारी खजाने से अशर्फियाँ दी जाती थी।

रात मे जितनी इमारत बनती थी, सुबह उसे तोड़ दिया जाता। इसी इमामबाडे में भूल-भुलैया थी जिसके बारे मे मैंने सुना था कि जो भी अन्दर गया लौटकर वापस नही आया। यहाँ तक सुना था मैंने कि बडे-बड़े अगरेज कमर मे रस्सी बाँधकर अन्दर गये, परन्तु वे भी लौट नही सके। परन्तु ऐसी कोई बात थी नही। हम लोग जब पिनिया लेने जाते तो इमामबाड़ा और भूल-भूलैया की सैर करते। अब तो खैर, वहाँ अन्दर जाने का टिकट लगता है। परन्तु उन दिनो ऐसी बात नही थी। हम लोग मौज मे वहाँ घूमते-फिरते।

हाँ, यह बात अवश्य थी उसमे, जो आज भी है कि जिस रास्ते से आप अन्दर घुसें उसी रास्ते से बाहर आ जाएँ, यह असम्भव-सा है।

वहीं इमामबाडे के अहाते मे एक बावली बनी थी जो आजकल शायद बन्द हो गयी है। परन्तु उन दिनो खुली थी। यह एक बडी वृत्ताकार इमारत थी जो ज़मीन के अन्दर बनी थी। अन्दर जाने के लिए ज़मीन से सीढ़ियाँ बनी थी। तीन या शायद चार मजिलें उन दिनो पानी के ऊपर थी। शेष पानी में डूब गयी थी। लोग कहते थे कि सात मजिले थी उसकी। अन्दर ही अन्दर गोमती से पानी आता था जिसमे नवाब की बेगमें नहाया करती थी। यह भी सुना था मैंने कि उसीके अन्दर से उस ज़माने मे दिल्ली के लाल किले तक सुरग बनी थी। सिराज्जुद्दौला के ज़माने में जब अग्रेजो ने अवध पर कब्ज़ा किया तो कहा जाता है, उसकी तमाम बेगमो ने, तीन सौ पैसठ बेगमे थी उसकी, असमत बचाने के लिए इसी बावली मे कूदकर जान दे दी थी। उन दिनो मैं सोचा करता था और आज भी सोचता हूँ कि वह क्या दृश्य रहा होगा जब एक के बाद एक बेगम ने उस बावली मे छलाग लगायी होगी। वहाँ जाकर मेरा मन अक्सर उदास हो जाया करता और घटो मै वहाँ पानी के

पास सीढ़ियो पर बैठा रहा करता। कभी-कभी मुझे यह भी ख्याल आता कि शायद उन बेगमो की रूहें आज भी यही रहती हो और अगर वे निकलकर मुझे घेर ले तो मै क्या करूँगा। कभी-कभी मुझे यह भी ख्याल आता कि हो सकता है, उन बेगमो का कोई जेवर, हार, कान का बूंदा या इस प्रकार की कोई चीज कही पडी मिल जाये। एक बार उसकी वृत्ताकार इमारत मे जहाँ दिन मे भी अन्धेरा रहता था और खासी सीलन थी, एक स्थान पर टूटी हुई चूडियो के कुछ टुकडे हमे मिले भी थे। उन दिनो हम लोगो ने आपस मे काफी देर तक बहस की थी कि यह चूडियाँ उन्ही बेगमो मे से किसीकी होगी। आज मै समझ सकता हूँ कि उस निर्जन स्थान मे वे कहाँ से पहुँची होगी। परन्तु उन दिनो हम यही समझते थे कि वे उन बेगमो की ही थी।

इमामबाडे के बाहर एक बहुत बडा-सा दरवाजा था जिसका असली नाम शायद रूमी दरवाज़ा है। परन्तु उन दिनो हम लोग उसे 'मच्छी भवन' के नाम से जानते थे। कभी-कभी हम लोग उसके ऊपर भी चढ जाते और उसकी सबसे ऊँची मजिल पर जा बैठते जहाँ से नीचे झांकने पर बहुत डर लगता। नीचे सडक पर चलनेवाले मोटर, तागे उतनी ऊंचाई से बच्चो के खिलौनो की तरह लगते।

एक बार यह सब घूमने के चक्कर मे मैं पिता से मार खाते-खाते भी बचा। हुआ यह कि पिता के किसी परचित या मोहल्लेवाले ने मुझे कम्पनी बाग की तरफ देख लिया और उसने आकर उनसे शिकायत कर दी। मैं जब लौटकर आया तो अधेरा हो चुका था। पिता बाहर ही मकान की ड्योढी पर बैठे थे।

—कहाँ थे अभी तक ? मुझे देखते ही उन्होने प्रश्न किया।

—कही नही। मैंने उत्तर दिया।

—कही नही का क्या मतलब ? उनकी आवाज़ काफी सख्त थी।

—यही पार्क मे खेल रहा था। मैने कहा।

—पार्क मे खेल रहे थे ?

मैं समझ गया उन्होने ज़रूर मुझे खोजा होगा। मैं चुप रहा।

—साफ-साफ बताओ। नही तो हड्डी तोड़के रख दूंगा।

मैं फिर भी चुप रहा तो उन्होने एक झापड मेरे दिया। मैं रोया नही।

—कम्पनी बाग नही गये थे तुम? उन्होने पूछा।

—गया था। मैने स्वीकार किया।

—क्या करने?

—दर्शन करने।

— दर्शन करने? किसके दर्शन करने?

—एक बाबा जी आये है वहाँ।

असलियत मे उन दिनो वहाँ कोई श्रद्धानन्द या ऐसे ही कोई नन्द-मार्का बडे महात्मा आये हुए थे। गोमती के किनारे उनका मडप बना था। कोई बडा हवन आदि हो रहा था जिसमे हजारो लोग शामिल होते थे। महात्माजी की सवारी निकलती थी। सोने से जडे तख्त पर जिसे चार आदमी अपने कधे पर उठाकर चलते थे, वह निकलते थे। बगल मे दो व्यक्ति चाँदी का मोरछल लेकर चलते थे। यह सब मैंने सुन रखा था।

—किसके साथ गये थे? पिता का गुस्सा कुछ कम हुआ।

—मोहल्ले के और लडके थे। मैंने कहा।

—घर मे कहकर क्यो नही गये?

मैं चुप रहा।

पिता शान्त हो गये। बल्कि माँ उनपर बिगड़ने भी लगी कि बिना पूछे-जाँचे मार-पीट करने लगे हो। महात्माजी के दर्शन करने चला गया तो इसमे क्या बुरी बात हो गयी।

मैं बाल-बाल बच गया, नही तो वाकई उस दिन मेरी हड्डी सलामत न रहती।

इसके अलावा अधिकतर हम लोग पार्क मे ही खेलते थे। एक विचित्र खेल उन दिनो चला था। 'आती माने छाती'। सब लडके इकट्ठे होकर 'अक्कड-बक्कड बम्बे बो' करके एक लडके को चोर बनाते। तब हममें से कोई लडका उसके सीने पर हाथ रखकर कहता, 'आती छाती, तू ले आ बबूल की पाती।' बबूल की जगह किसी और पेड का नाम भी हो सकता था जैसे, अगूर, पपीता, लसोढा, बेर, नीबू, आम, कटहल, बेल, कनेर या कोई और पेड। चोर बने लडके को उस पेड की पत्ती लाकर हममे से किसी एक को छूकर चोर बनाना होता और लायी हुई पत्ती दिखानी पडती और तब वह दूसरा लडका इसी तरह पत्ती लेने जाता। कौन-सा पेड कहाँ लगा है इसकी जानकारी हमे रखनी पडती थी। और उसके लिए बडे-बडे खतरे हम मोल लेते थे। दूसरो के बगीचो मे घुसना पडता था। पेडो पर चढना पडता था। और सब पेड तो दो-तीन फर्लांग के दायरे मे मिल जाते, लेकिन कटहल की पत्ती लेने हमे दो-ढाई मील डी ए वी कालेज जाना पडता था। उसकी ग्राउण्ड मे तीन-चार पेड कटहल के थे।

अक्सर हम लोग पत्तियाँ अपने घरो मे भी छिपाकर रखते थे, ताकि हमे दूर न जाना पडे। ऐसे मे जब और लडके निश्चिन्त बैठे रहते, इस खयाल से कि हमे आध घटा कम से कम लगेगा पत्ती लाने मे, हम उन्हे चकमा देकर घर से पत्ती लाकर उन्हें पीछे से जाकर छू लेते। एक और खेल खेलते थे हम लोग। उसका नाम था 'पहाडी माने टीलो।' क्या अर्थ होता है इसका मै आज भी नही जानता। खेल यह था कि सारे लडके दो टोलियो मे बँट जाते और अलग-अलग गलियो मे घुसकर चाक या कोयले से मकानो की दीवारो पर, चबूतरो के नीचे, बहरहाल जहाँ भी जगह मिलती लाइने खीचते। तब कोई एक पार्टी आकर दूसरी पार्टी से चिल्लाकर कहती 'पहाडी माने टीलो' और लाइनें खीचना उसी समय बन्द हो जाता। तब हम एक दूसरो की लाइने काटते। जो लाइने हम न खोज पाते और इस तरह काटने से रह जाती, उनकी गिनती

होती। जिसकी लाइनें ज्यादा होती वह पार्टी दूसरी पार्टी के लड़को के हाथो पर उतनी ही चपतें लगाती।

इसके अलावा गुल्ली-डडा, गेंद-तडी, सेविन टाइम्स आदि तो होता ही था। गुल्ली-डडा का उन दिनो बहुत रिवाज़ था। बडे-बडे लडके भी शर्त लगा-लगाकर उसे खेलते थे। इसके लिए वे पार्क से थोडी दूर पर रेल की पटरी के पार एक बडे मैदान मे जमा होते। जिस दिन यह शर्तवाला गुल्ली-डडे का मैच बडे लडको के बीच होता, हम उसे जरूर देखने जाते। वैसे भी वह स्थान मुझे बहुत पसद था। रेल की पटरी के दोनो ओर तालाब थे। दूसरी ओर वाला तालाब काफी बडा था। उसमे धोबी कपड़े धोते थे। लाइन की लाइन धोबी और धोबिनें घुटनो-घुटनो तक पानी मे खडे होकर 'हैइया हो हैइया' करते रहते और कपडो को पाटो पर पटक-पटककर छपाक-छपाक की आवाज़ें पैदा करते रहते। दर्जनो गधे, जिनमे कुछ के आगे के पाँव या एक ओर के दो पाँव रस्सी से बधे रहते, बगल के मैदान मे घूमा करते। धोबियो के छोटे-छोटे बच्चे भी वही घूमते रहते या अपने माता-पिता की सहायता करते रहते। बडे-बड़े बासो को गुणा के निशान में रस्सी के सहारे वे मैदान मे खडा कर देते। रस्सी के बलों के बीच धुले हुए कपडे फँसा दिये जाते जो हवा मे उडते रहते। कपडों को इस प्रकार हवा मे उडते देखना हमे काफी अच्छा लगता और हम उनके आकार मे उन्हे पहननेवालो के शरीरो के आकार का अनुमान लगाकर आपस में बहस करते।

तालाब के काफी बड़े भाग मे ऊपर काई जमी रहती जिससे कोका बेली के फूल खिले रहते। सैकडो चिड़ियाँ, पनडुब्बियाँ, बगुले आदि उसमें बैठे रहते। बगुले बडे मज़े मे एक टाग उठाकर चुपचाप खडे रहते और अचानक चोच को पानी मे डुबाकर मछली पकड लेते। कभी-कभी तालाब के किनारे साँप भी दिखाई दे जाते।

ठीक इसी तालाब के किनारे रेल का सिगनल था जो एक पक्के चबूतरे पर बना था। मै अक्सर उस चबूतरे पर घटो बैठकर धोबियो को

कपडे छाटते, गधो को एक दूसरे के दुलत्ती झाडते, या बगुलों को मछली पकडते देखता रहता। एक और हमारी प्रिय हरकत थी। सिगनल का तार जिस गरारी से होकर जाता था उस गरारी में हम ढेला फँसा देते जिससे सिगनल होने मे जैसा कि हम समझते थे, काफी कठिनाई होती थी। दो-एक मर्तबा सिगनल के ऊपर चढकर उसकी बत्ती भी, उन दिनो उसमे मिट्टी के तेल की बत्ती जलती थी, हम मार लाये। पत्थरो से टेलीफोन के खम्भो मे लगे चीनी के सफेद इन्सुलेटरो को फोड़ना तो बहुत ही प्रिय था। इस काम मे आपस मे हम लोगो का कम्पटीशन हुआ करता। हमारा एक दोस्त तो, शायद रज्जन नाम था उसका, इतना निशानची था कि एक-एक दिन मे तीस तीस इन्सुलेटर फोड़ डालता था। एक और हरकत हम करते। जब देखते कि ट्रेन आनेवाली है तो हम लाईन के ऊपर बैठ जाते। ड्राइवर सीटी पर सीटी मारता मगर हम जब ट्रेन बिलकुल पास आती तभी उठते। ड्राइवर हमे गाली देता और हम उसे गाली देते। ढेले और पत्थरबाजी भी होती। मगर फिर यह हमने बाद मे यह सोचकर बन्द कर दिया कि अगर किसी मुसाफिर के लग गया तो नाहक उसको गहरी चोट आ सकती है।

तालाब के पास खेत भी थे। इन खेतो में ज्यादातर सब्जी बोयी जाती थी। बैंगन, आलू, गोभी, मूली, शलजम आदि। इन खेतो से सब्जी चुराना भी हमारे लिए बहुत ही आनन्ददायक खेल था। इसके लिए हम झुटपुटा हो जाने पर गोल बनाकर निकलते और खेत के पास आकर अलग-अलग दिशाओ से उसमे घुस जाते। फिर जिसके जो हाथ आता लेकर भागते। जिन दिनो होली जलती उन दिनो सात दिन तक हम नियमपूर्वक आलू चुराकर उसमे भून-भूनकर खाते। एक बार हमारा एक साथी पकडा भी गया था। खेतवाले ने उसे काफी देर तक रस्सी से बाध रखा था। आखिर जब मुहल्ले में बडे लोगो को पता चला तो वे जाकर उसे छुड़ाकर लाये।

उसी तालाब मे अक्सर लोग मछली भी मारा करते। बडी मछलियाँ उसमे नही थी। यही छोटी-छोटी गिरई मिलती थी। लोग उन्हे कटिया से पकडा करते। रेल की पटरी के किनारे-किनारे जाकर रेलवे का कैरिज कारखाना था। अक्सर शाम को ड्यूटी से लौटते हुए रेलवे के खलासी और मजदूर आदि नियमपूर्वक उस तालाब मे मछली पकड़ते। एक-दो घण्टो मे सात-आठ मछलियाँ पकडकर वे चले जाते। महीनो तक मेरा यह नियम था कि मैं शाम को जाकर सिगनल के चबूतरे पर बैठकर उन्हे मछली पकडते देखता रहता।

अक्सर बारिश के दिनो मे जब तालाब का पानी बढता तो खेतो मे आ जाता। और उनमे भी छोटी मछलियाँ भर जाती। जब पानी सूखता तो ये मछलियाँ उन्ही खेतो मे पडे-पडे मर जाती।

एक बार ऐसे ही एक खेत मे मैंने सैकडो छोटी-छोटी चमकीली मछलियाँ देखी। उससे पहले मैंने बाज़ार मे शीशे के बीकरो मे रगीन मछलियाँ बिकते देखी थी। मैने सोचा, मैं इन्हें पकडकर पाल सकता हूँ। इसके लिए शीशे के बर्तन की आवश्यकता थी। घर आकर मैने सारा कुछ खोज डाला, मगर मुझे शीशे का बर्तन न मिला। आखिर मे मैने भडारे मे रखी लकडी की अलमारी खोली। उसमे शीशे की अचारदानियो मे अचार रखा था। दोपहर मे जब माँ किसी काम मे व्यस्त थी, मैं एक अचारदानी उठा लाया। उसका अचार निकालकर मैंने कूडे मे फेंक दिया और पार्क मे लगे म्युनिसिपालिटी के पाइप पर अचारदानी धोकर उसे लेकर खेत मे पहुँच गया। मछलियाँ पकडने मे मुझे ज्यादा दिक्कत नही हुई। वे बहुत ही उथले पानी मे बडी सख्या मे थी। कही-कही गड्ढो मे फँस भी गयी थीं। उन्हे पकडकर मैंने अचारदानी मे भरा और फिर उसका पानी बदलकर पाइप से साफ पानी उसमे भरकर घर ले आया। घर आकर मैने उसे उसी अलमारी मे रख दिया। माँ से मिले कुछ पैसो से लाई लाकर भी मैंने उसीमे मछलियो के खाने के लिए डाल दी। इसके बाद रोज़ दिन मे दो-तीन बार मै चोरी से जाकर उन्हें देख आता।

परन्तु दो-तीन दिनो बाद ही उन्होने मरना शुरू कर दिया। और तभी एक दिन जब माँ ने किसी काम से अलमारी खोली तो उन्हे उसमे बू आयी और मेरा यह राज खुल गया। मुझे मार तो नही पडी, मगर डॉट खानी पड गयी। उस अचारदानी का अचार तो मैंने फेंक ही दिया था। शेष अचारदानियो का अचार भी माँ ने फिकवा दिया। और वे अचारदानियाँ सदा लिए बहिष्कृत कर दी गयी।

तालाब और खेतो के आगे एक पुराना कब्रिस्तान था। कभी-कभी दिन मे हम लोग वहाँ भी घूमने निकल जाते। वहाँ बहुत-सी पुरानी कब्रें थी जिनमे से कुछेक के ऊपर इमारते बनी थी जिनमे अच्छी नक्काशी की गयी थी। कब्रो के ऊपर प्राय. मरनेवालों के नाम, पते, आयु और किसी-किसीपर कुछ शेर-शायरी आदि भी लिखी रहती। हमारा एक दोस्त जो उर्दू जानता था, उन्हे पढकर हमे सुनाया करता। उन्हें पढ-पढकर हम मरनेवालो के बारे मे सोचते। आज भी मुझे याद है, उनमे से एक पहली रात की दुल्हन की कब्र थी जो साँप के काटने से मर गयी थी। एक काफी बडी टूटी-फूटी वीरान-सी इमारत भी थी जिसके अदर उसके कच्चे फर्श में साही, लोमडी जैसे जानवर रहते थे। एक बार हम वहाँ से साही के काटे उठा लाये थे। हमने सुना था कि अगर किसी व्यक्ति के दरवाजे पर साही का काँटा रख दिया जाये तो उस घर मे बहुत झगडा होता है। एक काटा मैने अपनी गली मे एक बूढी औरत के दरवाजे पर रख दिया था जो पहले ही से काफी लडाके स्वभाव की थी। लडाई उसके घर मे हुई या नही, यह तो आज मुझे याद नही। पर इतना याद है कि दूसरे दिन सुबह-सुबह उसने अपने दरवाजे पर खडे होकर सैकडों गालियाँ बकी थी कि जिसने भी उसके दरवाजे यह काटा रखा हो उसका सारा कुल नाश हो जाये। शायद उसे पूरा विश्वास था कि यह काम किसी बडे आदमी का है, बच्चो का नही।

उसी कब्रिस्तान मे एक मीनार भी बनी थी जो ज्यादा ऊंची तो नही थी, फिर भी उसपर से शहर का काफी बड़ा भाग दिखाई देता था। कभी-कभी दोपहर मे घण्टो मै उस मीनार पर चढकर बैठा रहता। उसके अन्दर दीवालो पर सैकडो नाम खुदे थे जो निश्चय ही वहाँ आनेवालो ने खोदे होगे। मैने भी उन दिनो अपना नाम उसपर लिखा था। आज वह मीनार और कब्रिस्तान वहाँ नही है। वहाँ एक अच्छी खासी कालोनी बन गयी है। सोचता हूँ, जिन लोगो ने अपने नाम वहाँ उस मीनार पर लिखे थे वे आज कहाँ होगे। क्या सभी मेरी तरह गुमनाम होगे? या कोई ऐसा भी होगा जिसका नाम लोग बाद तक याद रखेगे?

पतगबाजी भी मैंने बहुत की। दीवाली के दिनो में तो पिता की ओर से भी उसके लिए छूट रहती थी। बल्कि मैं उनसे ज़िद करके इसके लिए पैसे भी ले लिया करता था। क्योकि जमघटवाले दिन पतग उडाने की तो जैसे धार्मिक स्वीकृति प्राप्त थी। परन्तु उसके अतिरिक्त भी मैं काफी पतगबाजी करता था। शायद वह पूरा मुहल्ला ही पतग-बाज़ो का था। क्योकि वहाँ के बडे-बडे लोग, जिनमे से कुछ सरकारी नौकरी भी करते थे, पतगबाजी का शौक रखते थे। मेरे एक मौसा के घर में जो कचहरी मे किसी अच्छी जगह पर थे, बडी-बडी चर्खियाँ सद्दी और माझे से भरी और दर्जनों पतगें दीवाल पर खूंटियो मे लटकती रहती थी। पतग लड़ाने के भी बडे-बडे मैच हुआ करते थे। इनकी जगह भी प्राय वही तालाब का किनारा था। वैसे कभी-कभी ये मैच लोग अपने घरो की छतो पर से भी करते थे।

पतग लडाने से ज्यादा मजा पतग लूटने मे आता है। मुझे याद है, एक बार मैंने एक आदमी की पतग मे ज़बर्दस्ती लगड डाल दिया था। एक बद्री पहलवान थे जो हमारे मकान से कुछ दूर पर रहा करते थे।

वे अपने घर से पतग उडा रहे थे। कोई बदा लडा रहे थे। उनकी पतग की डोर मेरे मकान से दो-तीन मकानों बाद एक मकान के आगन के ऊपर थी। मै उनकी डोर लूटने के लिए उस मकान मे मौजूद था। परन्तु बद्री पहलवान की पतग कटने का नाम ही नही ले रही थी। वे पेंच पर पेच काटते जा रहे थे। आखिर जब मुझसे और सब्र नही हुआ तो मैंने बिना कटे ही उनकी पतग पर लगड चला दिया। बद्री पहलवान अपने घर की छत से चिल्लाते रहे। लेकिन मैंने उनकी सारी डोर मय पतग के खीच ली। पतग इतनी ऊँचाई पर थी कि सारी छत डोर से भर गयी। मेरे लिए उसे सुलझाना कठिन हो गया। फिर भी एक बडा गुल्ला मैंने उसका तैयार कर लिया।

बाल-बाल बचा उस दिन मैं। इत्तिफाक से मकान से डोर और पतग लेकर बाहर निकलने से पहले मैंने छज्जे से गली मे झांक लिया। बद्री पहलवान एक चबूतरे पर उकड़ूं बैठे थे। अगर कही मै पतग और डोर हाथ मे लेकर निकल आया होता तो आज यहाँ इस स्थिति में होने के बजाय मै कोई खोमचा लगाये बैठा होता। और बगल मे मेरी बैसाखियां रखी होती। परन्तु मैने बद्री पहलवान को देख लिया और जब तक वह वहाँ से चले नही गये, मै उस घर से बाहर नही निकला। और जब निकला तो खाली हाथ। पतग और डोर उसी घर मे रख आया।

स्कूल जाना तो बन्द था ही, प्राय यही मेरी प्रतिदिन की दिनचर्या थी। हां, इतवार और छुट्टीवाले दिन मुझे घर मे कैद रहना पड़ता। उस दिन पिता जी दिन-भर घर मे रहते और उनके सामने घर से निकलने की सख्त मनाही थी। केवल शाम को एक-दो घटे के लिए आज्ञा मिलती। बस।

ऐसे ही किसी इतवार या छुट्टीवाले दिन मै घर मे था। दोपहर का समय था। या शायद दोपहर निकल चुकी थी। पिता खाना

खाकर अन्दर कमरे मे सो रहे थे। मुझे भी उन्होने बगल की चारपाई पर लिटा रखा था। पर मुझे नीद नही आ रही थी। कुछ देर तो मैं वैसे ही लेटा रहा। जब पिता सो गये मै चुपके से बाहर निकल आया। बाहर मतलब छत पर। घर से बाहर निकलना तो असम्भव था। बाहर के दरवाजे खुलने मे इतनी जोर की आवाज करते थे कि गहरी नीद मे सोया आदमी जग जाये। और फिर पिता तो जरा-सी खटपट मे ही आँख खोल देते थे।

छत पर निकलकर मै सोच रहा था कि क्या किया जाये। तभी मैंने देखा छत की मुण्डेर पर एक कबूतर बैठा था। बहुत ही स्वस्थ और खूबसूरत, गहरे कत्थई और सफेद रग का। वह बार-बार गर्दन मोडकर इधर-उधर देख रहा था और चोच फैलाकर लम्बी सास ले रहा था। शायद वह काफी दूर से उडकर आया था और थक गया था। प्यासा भी था।

मैने झट अपना चिडिया पकडनेवाला सामान निकला। अरहर की सूखी लकडी की बनी एक झल्ली थी। उसे मै आधा झुकाकर एक लकडी के सहारे छत पर झुकाकर खडा कर देता और उसके नीचे चावल आदि बिखेर देता। लकडी मे एक लम्बी रस्सी बाँधकर मै छुपकर दूर बैठ जाता। जब चिडिया यानी गौरैया उसके नीचे दाना चुगने आती तो मै रस्सी खीच लेता। रस्सी खीचते ही लकडी हट जाती और झल्ली जमीन पर गिर पडती। चिडिया उसके नीचे बन्द हो जाती। गौरैया पकडकर मै उसे रोशनाई आदि से रगकर उसके पाँव मे डोरा बाँध कर उडाता। तब माँ के बिगडने आदि पर उसे छोड देता। यही सारा सामान निकालकर मैने सेट किया। झल्ली के नीचे एक कटोरे मे पानी भरके भी रख दिया और रस्सी पकडकर छत के दूसरे कोने मे दुबककर बैठ गया।

कबूतर सारा समय शायद मुझे ऐसा करते देखता रहा। कुछ देर वह वही पर बैठे पानी को घूरता रहा। यदि कबूतरो मे यह शक्ति

होती है तो जरूर वह अनुमान लगा रहा था कि कही कोई खतरा तो नही है। सम्भवत उसने निश्चय किया होगा कि खतरा नही है। या फिर वह बहुत ज्यादा प्यासा रहा होगा। बहरहाल थोडी देर मे वह वहाँ से उडकर दूसरी दीवाल पर आ गया, जो काफी नीची थी। तब वहाँ से उतरकर झल्ली के पास फर्श पर आ गया। एक-दो बार उसने इधर-इधर देखा तब बहुत ही मतर्क होकर पानी के कटोरे की ओर बढा। वहाँ पहुँचकर उसने एक बार फिर गर्दन घुमाकर इधर-उधर देखा, तब अपनी चोच पानी मे डाल दी। एक चोच पानी पीकर उसने फिर घूमकर पीछे देखा और तब चोच कटोरे मे डुबोकर निश्चिन्त होकर पानी पीने लगा। इस सारे समय मै साँस रोके बैठा रहा और जैसे ही उसने दुबारा पानी पीना शुरू किया, मैंने रस्सी को झटका दे दिया। रस्सी को झटका देते ही छडी अलग हट गयी और झल्ली जमीन पर गिर पडी। कबूतर उसके नीचे था। परन्तु उसने जोर से पख फडफडाये और मुझे लगा कि वह झल्ली उलटकर उड जायेगा। तभी मैंने जल्दी से दौडकर झल्ली को ऊपर से छाप लिया।

—क्या हो रहा है? पिता शायद कबूतर के पख फडफडाने से जाग गये थे।

—कुछ नही। मैंने कहा और दोनो हाथो से झल्ली दबाये रहा।

पिता बाहर निकल आये। —यह क्या? चिडिया पकडी जा रही है? उन्होने डाँटा। तभी शायद उन्होने कबूतर को देख लिया।

—कबूतर है क्या? उन्होने पूछा।

—हाँ। मैने झल्ली फिर भी नही छोडी।

वह आगे बढ आये। आकर उन्होने झल्ली को खुद सम्भाल लिया, तब बोले—जा अन्दर से चादर ले आ।

मैं लपककर गया और बिस्तर से चादर खीच लाया। उन्होने चादर मेरे हाथ से लेकर झल्ली को ढक लिया और तब झल्ली के नीचे

हाथ डालकर कबूतर को पकड लिया। पकडकर वह छत पर ही खड़ी चारपाई को फर्श पर गिराकर बैठ गये। मुझसे बोले—कैंची ले आ।

मैं भागकर कैंची भी ले आया। कैंची लेकर उन्होने बारी-बारी से उसके दोनो डैने फैलाकर उसके पख काट दिये। कुछ पख उन्होने दात से भी उखाडे। पख काट-कूटकर उन्होने उसे छत पर छोड दिया। उसने एक-दो बार उडने की कोशिश की। परन्तु पख कट जाने से अपने प्रयत्न मे असफल होकर वही छत पर टहलने लगा।

—था कहाँ यह ? पिता ने मुझसे पूछा।

— छत पर बैठा था।

—आस-पास किसीका होगा तो अभी आता होगा माँगने। उन्होने कहा।

—मैं नही दूंगा। मैं बोला।

—है अच्छी नस्ल का। उन्होने कहा।

मेरी याद मे तो नही, लेकिन माँ बताती थी कि कुछ वर्ष पहले उन्होने ढेर सारे कबूतर पाल रखे थे। आखिर जब उन्होने सारा घर गदा करना शुरू कर दिया और हर चीज़ मे, धोये हुए कपडो पर, सूखने के लिए डाले गये बिस्तरो पर, यहाँ तक कि खाने-पीने की चीजो मे भी बीट करने लगे तो माँ की बहुत जिद पर उन्होने उन्हे बेच दिया था। उन दिनो की लकडी की एक ढाबली भी ऊपर दुछत्ती मे रखी थी।

माँ उस समय दूसरे कमरे मे थी। बाहर आकर उन्होने देखा तो वह बिगडी —फिर यह गदगी शुरू हो गयी घर मे ? उन्होने कहा।

—तुम्हारे सुपुत्र ने पकडा है। पिता ने कहा।

—यह पर-वर तो तुमने काटे होगे।

पिता ने कोई जवाब नही दिया।

कुछ देर बाद चाय आदि पीकर वह बाहर चले गये। मैंने दुछत्ती पर चढकर ढाबली निकाली और उसे धो-धाकर छत के एक कोने मे फिट कर दिया।

माँ बिगड़ती रही मेरे ऊपर। परन्तु मैंने उनकी एक नही सुनी। पीपे से गेहूँ भी निकालकर मैने कबूतर के खाने के लिए छत पर फैला दिये। मगर उसने शायद ही एक-दो दाना खाया हो।

पिता देर तक नही लौटे। आखिर जब अधेरा होने लगा तो मैने उसे पकडकर ढाबली मे बन्द कर दिया।

--सिल उठाकर इसके ऊपर रख, नही तो बिल्ली खोलकर खा जायेगी। माँ ने मुझे डॉटकर कहा।

मैंने सिल उठाकर ढाबली के ढक्कन को ऊपर से दबा दिया।

दूसरे दिन भी उसने दाना नही चुगा। ज्यादातर वह अपने पखो मे चोच खोसकर किसी कोने मे दुबका बैठा रहता।

—मर जायेगा यह इसी तरह, तब पाप पडेगा तुम्हारे सिर। माँ ने पिता से कहा।

—दो-एक दिन मे ठीक हो जायेगा। पिता ने कहा।

मैंने उसे पकडकर हाथ से दाना खिलाना चाहा, लेकिन तब भी उसने नही खाया। मुझे भी दुख हुआ मन में।

आखिर दो-चार दिनो बाद पिता कही से एक और कबूतर ले आये। जोडा हो गया। अब दोनो आराम से रहने लगे। दिन-भर मौज मे इधर-उधर घूमते, दाना चुगते और ढाबली मे आराम करते। उड अभी भी नही पाते थे।

तभी एक दिन मैंने देखा वे तिनके चोच मे दबा-दबाकर ढाबली मे जमा कर रहे थे। दो-तीन दिन तक वे लगातार ऐसा करते रहे। मैं ढूंढ-ढूंढकर उनके लिए तिनके लाकर छत पर इधर-उधर बिखेर देता। वे उन्हें उठाकर ढाबली मे रख लेते। आखिर दो-तीन दिन बाद उन्होने अण्डे दिये। दो अण्डे देने के बाद उसे सेने लगे। एक बाहर घूमता तो दूसरा अण्डो के ऊपर बैठा रहता। मै रोज सुबह उठकर देखता कि बच्चे निकले या नही। माँ ने सख्त ताकीद कर रखी थी कि अण्डे छूना नही, नही तो खराब हो जायेंगे। बड़ी मुश्किल से मै अपने को रोक पाता।

मेरी यही इच्छा होती कि अण्डों को उठाकर हथेली पर रखकर देखूं। आखिर कुछ दिनो बाद उनसे बच्चे निकले। बहुत नन्हे-नन्हे। लाल मास के लोथड़ों जैसे। बच्चे बडे हुए। उनके पँख निकले। दोनो माँ-बाप उनको दाना चुगाने लगे। और तब वे उनके साथ उडना सीखने लगे। अब तक उनके नये पर उग आये थे, और वे अच्छा खासा उड़ने लगे थे। और फिर चार से आठ, आठ से सोलह और फिर न जाने कितने कबूतर हो गये। दो-चार बिल्ली ने मारे। कुछ अण्डे बन्दरो ने फोडे। मगर कबूतरो की गिनती मे बढौत्तरी ही होती गयी।

ढाबली बहुत पहले ही छोटी पडने लगी थी। पिता ने टीन के पीपो को काटकर छत के छज्जो की छन्नियो मे लटका दिया था। वे उनमे रहने लगे थे। वहाँ भी वे अण्डे देने लग गये। अक्सर वहाँ से उनके बच्चे नीचे लुढक जाते और नीचे गिरकर मर जाते। अण्डे भी कभी-कभी लुढककर टूट जाते।

मैंने छत के ऊपर दो जगह बाँसो मे खपचियो के अड्डे बनाकर बाँध दिये थे। रोज सुबह और शाम छत पर चढकर मै सारे कबूतरो को उडाता। मेरे सीटी बजाने और कपडा हिलाने पर वे सारे के सारे लौट आते। कभी-कभी वे बहुत ऊँचे उड जाते। मुहल्ले मे दो-तीन जगह और लोगो ने भी कबूतर पाल रखे थे। वे भी उन्हे उडाते। कभी-कभी उडते-उडते एक गोल दूसरे गोल से मिल जाता और एक का कबूतर दूसरे मे आ जाता। मगर ऐसा बहुत कम होता था।

माँ को तो मेरे कबूतरो से चिढ थी ही। मेरे दोनो बडे भाई भी कम नाराज नही थे। अक्सर धोकर सूखे डाले गये उनके कपडो पर वे बीट कर देते। बडे भाई की आदत थी कि वह खुले मे खाट डालकर उसपर लेट या बैठकर पढते। जाडे के दिनो मे प्राय. वह छत पर धूप होने पर ऐसा ही करते। एक-दो बार जब वह लेटे पढ रहे थे कबूतर ने उनके ऊपर भी बीट कर दी। वह माँ पर बिगड़ने लगे कि यह क्या तमाशा

बना रखा है। घर है या चिड़ियाखाना? माँ ने कहा—मैं नही जानती। उन्हीसे कहना जब शाम को आयेंगे। उन्हींसे, यानी पिता से।

मझले भाई तो एक बार इतना ताव खा गये कि बोले मैं इस आबली-ढाबली मे आग लगा दूंगा और सब कबूतरो को हलाक करके रख दूंगा।

बस एक पिता थे जिनकी ओर से थोडी छूट मिली थी। आखिर जब सब ने विद्रोह कर दिया तो वह भी चुप हो गये। वैसे जब कबूतर नही थे, कभी-कभार पिता के डर से मैं पढने बैठ जाया करता था। परन्तु अब पढना-लिखना सब बालाएताक हो चुका था। आखिर पिता ने भी बिगडना शुरू कर दिया और एक दिन अन्तिम रूप से मुझसे बोले कि यह सारे कबूतर किसीको दे आओ, नही तो मैं किसी इतवार को जाकर इनको नखास मे बेच आऊँगा।

मुहल्ले मे और जिन लोगो ने कबूतर पाल रखे थे, मेरी उनसे काफी जान-पहचान हो गयी थी, हालाकि वे मुझसे उम्र मे काफी बडे थे। मैंने सोचा कि सारे कबूतर उनमे से किसीको दे आऊँ। इसमे यह सहूलियत थी कि मै सुबह शाम वहाँ जाकर उनकी देख-भाल कर सकता था। परन्तु मैने कुछ दिन प्रतीक्षा करना उचित समझा। हो सकता है, मैंने सोचा, पिता का गुस्सा कुछ दिनो मे ठडा हो जाये। एक काम मैंने और करना शुरू किया। दिन मे अधिकतर मैं उनको बन्द रखता। मगर वे सख्या मे इतने अधिक हो गये थे कि सारे के सारे ढाबली मे समाते नही थे। कुछ न कुछ खुले रह ही जाते। फिर भी जितनो को बन्द करना सम्भव था, मैं बन्द कर देता। शाम को पिता आफिस से आते तो कुछ देर मैं पुस्तकें आदि भी लेकर बैठ जाता। परन्तु इस सबका कोई असर नही पडा। पिता अपनी जगह पर दृढ थे या फिर माँ उन्हे दृढ बनाये थी। अगला इतवार आते ही उन्होने घर मे बर्तन माँजने आनेवाले महरे से दो-तीन बडे-बडे पिंजड़े मगवाये और कबूतरों को पकड़-पकडकर उनमे भरने लगे। मैंने रोना-धोना शुरू कर दिया। आखिर मुझे दो-

तीन दिन की मुहलत मिली। मैं समझ गया था कि अब कोई उपाय नही है। अतः मैंने मुहल्ले के एक आदमी से जिसके यहाँ कबूतर पले थे और जो मेरे घर से कुछ दूर पर रहता था, इस सिलसिले मे बात की। वह खुशी-खुशी राजी हो गया। मैने उसे बुलाकर कबूतर उसे दे दिये। फिर भी चार मैने रख लिये। माँ से मै बहुत रोया-गिडगिडाया तो वह मान गयी। पिता भी उनके कहने से राजी हो गये। लेकिन दो-तीन महीनो मे ही उनकी सख्या दुबारा बढ गयी और फिर वही बवडर शुरू हो गया।

इस बार मेरी एक नही चली। पिता ने सब कबूतरो को महरे के हाथ नखखास भेजकर बिकवा दिया। ढाबली तोडकर चूल्हे मे जला दी गयी। मुझे बहुत अफसोस हुआ। तीन-चार दिनो तक मुझसे ठीक से खाना नही खाया गया। दो एक बार मैं नख्खास मे देखने भी गया कि शायद वे वहाँ किसी दुकानदार के पास हो, परन्तु वे वहाँ थे नही। यह हो सकता है, मैं उन्हें पहचान न पाया हूँ। लेकिन इसकी सभावना कम थी।

उस दिन पहली बार मैंने देखा कि नखखास मे कबूतरो के अलावा और भी अनेक प्रकार के पक्षी और जानवर बिकने आते थे। तोता, मैना, बाज, लाल मुनिया, बटेर, तीतर, बतख, मोर, बुलबुल, यहाँ तक कि चील, कौवे और उल्लू आदि भी। जानवरो मे, खरगोश, सफेद विलायती चूहे, कुत्ते, बिल्ली, साही आदि। मेरी इच्छा होती कि यदि मेरे पास एक बड़ा-सा मकान होता तो मैं इन सबको खरीदकर वहाँ पाल लेता। लेकिन न तो मेरे पास मकान था, न पैसे ही।

अपने कबूदर दूसरे आदमी को देने के बाद मैं प्रायः रोज ही उसके यहाँ सुबह-शाम पहुँच जाता। उन्हें अपने हाथ से दाना खिलाता, अकाश मे उडाता और तब अधेरा होते-होते वापस आ जाता। यह बात मेरे बडे भाई को किसी तरह पता चल गयी और मेरे बाहर निकलने पर

पाबन्दी लगने लगी। मुश्किल यह थी कि बड़े भाई को उस आदमी का मकान भी मालूम था। एक बार उन्होने पिता को वहाँ भेज भी दिया और पिता मुझे उस आदमी के सामने ही पीटते हुए घर लाये। इसके बाद मेरा वहाँ जाना कम हो गया। हाँ, कभी-कभी दोपहर को जब उस आदमी के कारखाने मे छुट्टी होती मैं वहाँ पहुँच जाता। किसी मिल आदि में वह काम करता था।

तभी माँ को किसी तरह राजी करके उनसे कुछ रुपये लेकर मैं दो खरगोश खरीद लाया। गनीमत थी कि इसपर किसीको कोई आपत्ति नही हुई। बल्कि बडे भाई पढते समय उन्हे अपने पास बिठा लेते। उन्हे खाने को कुछ देकर वह अपने पढने-लिखने मे जुट जाते। वे कभी मेज पर ही तो कभी फर्श पर उनके परो के पास बैठ कुतर-कुतरकर उसे खाते रहते।

धीरे-धीरे खरगोशो का भी वश बढने लगा। दो से चार और तब छ हो गये। रूई के गोलो की तरह वे कमरो मे इधर-उधर उछलते-फिरते। कपडे भी कुतरने शुरू कर दिये उन्होने। परन्तु फिर भी किसीने कोई आपत्ति नही की। तभी मैं फिर बीमार पडा। वही बुखार। पिता डरे कि कही फिर टाइफाइड न हो। दूसरे ही दिन वह डाक्टर को बुला लाये।

—यह खरगोश किसने पाले है? आपने? डाक्टर ने खरगोशो को घर मे इधर-उधर टहलते देखा तो पिता से पूछा।

—इसीने पाल रखे है। उन्होने मेरे लिए कहा।

—इन्हे फौरन हटाइए आप। डाक्टर ने कहा—आप जानते नहीं, ये बीमारियाँ फैलाते हैं। इनके रोओ मे जर्म्स होते हैं।

बुखार तो मेरा दो-तीन दिन मे ही उतर गया, परन्तु खरगोश घर से हट गये।

कुछ दिनो के बाद स्कूल का नया सत्र शुरू हो गया। इस बीच मेरे स्वास्थ्य मे कोई विशेष वृद्धि हुई हो, ऐसा शायद नही था। हाँ, कुछ लम्बा मै ज़रूर हो गया था। हो सकता है वजन भी कुछ बढा हो। परन्तु वैसे देखने मे मै पहले ही के समान दुबला-पतला था। फिर भी मेरा नाम लिखा दिया गया। दुबारा आठवे मे। उसी स्कूल मे।

मैं नियम पूर्वक स्कूल जाने लगा। परन्तु पढाई मे मुझे बिल्कुल भी रुचि नही थी। हो सकता है मै कुछ कमजोर रहा हूँ। मास्टर का आना दो-ढाई वर्षों पहले ही बन्द हो चुका था। पिता भी कभी-कभार ही पढाते थे। वे बूढे हो चले थे। छ-सात मास बाद उनका रिटायरमेन्ट था। वे कुछ चिन्तित भी थे। फण्ड का जो रुपया उन्हें मिलना था, आधे से ज्यादा कर्ज अदा करने मे निकल जाना था। बडे भाई अभी बी ए प्रीवियस मे थे। वह एम. ए. करना चाहते थे। वैसे भी नौकरी कहाँ रखी थी। पिता अपने एक्स्टेशन के लिए प्रयत्न कर रहे थे जो शायद उन्हे नही मिलना था। शाम को वह मित्रो के साथ बैठकर कोई बिजनेस आदि करने की भी बातें करते। बहरहाल मुझे पढाना उन्होने करीब-करीब बन्द कर दिया था। बडे भाई ज़रूर कभी-कभार मुझे डॉट-डपटकर बिठाते, परन्तु थोडी ही देर मे वह खीझ उठते। मुझे मार बैठते और मुझसे झगडा हो जाता।

नतीजा यह हुआ कि मै अपनी क्लास मे कमजोर होता गया। यहाँ तक कि मुझे पढाई से अरुचि भी हो गयी। अक्सर मै इन्टरवल से भाग आता और आवारा लडकों के साथ इधर-उधर घूमता-फिरता। कभी-कभी घर चला आता। माँ पूछती तो कह देता कि जल्दी छुट्टी हो गयी। कभी कह देता किसी मास्टर की मृत्यु हो गयी। कभी कोई और बहना कर देता। वह सतुष्ट हो जाती।

छमाही इम्तहान हुआ। मैं बुरी तरह फेल हो गया। लगभग हर विषय में। पिता कार्ड के बारे मे पूछते तो झूठ बोल देता कि अभी नही मिला है। काफी दिनों तक इस तरह झूठ बोलता रहा। तब

मुझे डर हुआ कि पिता स्वय स्कूल चले जायेंगे। यह भी सम्भव था कि वह किसी मास्टर से पूछ लेते। एक मास्टर तो उसी मुहल्ले मे रहते थे। कुछ न कुछ करना चाहिए, मैंने सोचा। आखिर मैने एक तरकीब निकाली। बडी कठिनाई से मैंने स्कूल के आफिस से एक कार्ड चुराया। उसपर अपना नाम लिखकर मनमाने नम्बर लिखे, क्लास टीचर के जाली दस्तखत बनाये और लाकर पिता को दिखा दिया। भाइयो ने भी देखा। किसीको कोई शक नही हुआ। इस तरह मै बच गया।

परन्तु सालाना इम्तहान मे मेरे सामने कोई रास्ता नही था। छमाही मे फेल हो जाने के बाद स्कूल जाना मैने बिलकुल बन्द कर दिया था। फीस भी जमा नही करता। उन पैसो से पतंगबाजी करता। चाट-बाट खाता। एक-दो बार सिनेमा देखने भी गया। 'जीनत', 'पतगा', 'जिद्दी' आदि पिक्चर मैने फीस के पैसो से ही देखी थी। कभी-कभी बल्कि सदा ही कोई न कोई और लडका भी साथ मे जरूर होता। ऐसी स्थिति मे जब स्कूल जाना ही मैंने छोड दिया था, परीक्षा का कार्ड लाकर मै पिता को कहाँ से दिखाता। आखिर मै उनसे झूठ बोला। मैने कहा कि कार्ड डाक द्वारा भेजे जायेंगे। लडको को दिये नही जायेगे। चूँकि पिता को मेरे ऊपर कोई शक नही था, वह यही समझते थे कि मै पढाई मे ठीक चल रहा हूँ, छमाही मे भी अच्छे नम्बरो से पास हूँ, उन्हे कोई शक नही हुआ। वह मान गये। परन्तु जब दो-एक हफ्ते बीत गये तो उन्हे चिन्ता हुई। उन्होने मुझे फिर डाँटना डपटना शुरू किया। बोले, स्कूल से पता करके आओ। मै फिर उन्हे चकमा देने मे सफल हो गया। मैंने कहा कि मै क्लास टीचर के घर से पता लगाकर आया हूँ, उनके कोई रिश्तेदार मर गये हैं, इसीलिए रिजल्ट नही बने। जब वह लौटकर आयेगे तब बनेंगे। मुहल्ले के और लडको को मैने समझा रखा था कि वह मेरे घर मे कुछ न बतायें। सौभाग्य मे पिता ने उनसे कुछ पूछा भी नही। इसी तरह पूरी छुट्टियाँ निकल गयी। और स्कूल दुबारा खुलने को आ गया।

जैसे-जैसे स्कूल खुलने का दिन निकट आने लगा मेरी रूह फना होने लगी। अब क्या होगा ? मैं जानता था कि पिता पीटेंगे तो एक भी हड्डी सलामत नही छोडेगे।

आखिर स्कूल खुल गया और पिता ने मेरे भाई को पता लगाने के लिए कहा। दो-एक दिन निकल गये, मगर कुछ नही हुआ। शायद भाई वहाँ जा नही पाये। तभी एक दिन वह सारा किस्सा पता लगा लाये। शाम को जब पिता आफिस से लौटकर आये मेरे सामने ही भाई ने उन्हें सारी बाते बतायी कि छमाही मे भी मै फेल था और यह कि उसके बाद से मैने स्कूल के दर्शन भी नही किये है। फीस भी नहीं जमा हुई है।

मै चुपचाप खडा सुनता रहा।

—यह सच है ? पिता ने मुझसे पूछा।

मैंने कोई जवाब नही दिया। मै समझ रहा था कि पिता कोई मोटा-सा डडा ढूँढकर मेरी पिटाई चालू कर देगे। परन्तु उन्होने ऐसा कुछ नही किया। केवल मुझसे बोले— मेरी आँख के सामने से हट जा।

मै एक-दो मिनट वहाँ खडा रहा। तब डर के मारे दूसरे कमरे मे चला गया। उस रात न पिता ने खाना खाया न मैने। माँ मुझे देर तक समझाती रही। बिगडती और रोती रही।

दो-चार दिनो तक मै पिता की निगाह से बचता रहा। जहाँ वह उठते-बैठते मै उस कमरे मे न जाता। उन्होने भी मुझसे बात करना एक तरह से बन्द कर दिया था। पहले वह कभी मुझसे बीडी माचिस आदि मँगाया करते थे। वह भी अब मुझसे न कहते। तब एक दिन उन्होने मुझको बुलाया और गभीरता पूर्वक पूछा—क्या इरादा है ? पढना चाहते हो या नही ? न पढना चाहते हो तो वैसा बोलो।

मैं चुप रहा तो उन्होने कहा—कोई जल्दी नही है। सोचकर जवाब देना। हाँ, यह सोच लो कि पढोगे तो अपने लिए। मेरी उमर तो कट आयी है। अगर भाइयो की गुलामी करके तुम्हारी जिन्दगी

कट जाये तो मत पढ़ो-लिखो। और अगर इज्जत की ज़िन्दगी बसर करना चाहते हो तो कम से कम हाई स्कूल पास कर लो।

— पढ़ूंगा क्यो नही। मैंने कहा।

—क्यो नही का क्या मतलब? उन्होने कहा, इसी तरह पढा जाता है जिस तरह तुम पढते हो?

मै चुप रहा।

—बोलते क्यो नही?

— अब से ठीक से पढ़ूंगा। मैंने कहा।

—फिर सोच लो।

मै चुप रहा।

—बोलते क्यो नही? उन्होंने कहा। पढना हो तो नाम लिखाया जाये। नही तो क्यो बेकार मे फीस के पैसे दिये जायें। घर का खर्च वैसे ही बडी मुश्किल से चलता है। किसी काम मे ही आये।

—पढ़ूंगा। मैने कहा।

—रोज शाम को दो घटा बैठकर पढना पडेगा। न कुछ समझ में आये तो दादा से पूछो। दो-दो भाई तुमको पढानेवाले हैं। परेशानी क्या है तुमको?

मैं चुप रहा।

—इसी स्कूल मे पढोगे या दूसरे मे? उन्होने पूछा।

—जिसमे आप कहे। मैने कहा।

—दूसरे मे पढो अब। यह स्कूल ठीक भी नही है, उन्होने कहा, और फिर तुम्हारे साथ के लडके यहाँ आगे भी निकल गये होगे। तुमको शायद कुछ शर्म आती हो।

आखिर मेरा नाम एक दूसरे स्कूल मे लिखा दिया गया। उस दिन वाकई मैने तय किया कि अब मन लगाकर पढ़ूंगा। पूरी मेहनत से। और अच्छे नम्बरो से पास हूँगा। मेरे लिए नयी किताबें-कापियाँ आयी। कुछ कपडे भी नये बने और मै नियमपूर्वक स्कूल जाने लगा।

इसीके कोई एक-दो महीने पश्चात पिता नौकरी से रिटायर हो गये। लेकिन वे खाली नही बैठना चाहते थे। दूसरे दिन से ही उन्होने दौड़-धूप शुरू कर दी और अन्त मे एक नौकरी खोज ही ली। किसी कारखाने मे। पता नही क्या काम था। सम्भवत वे मजदूरो की हाज़िरी आदि लिखते थे। हो सकता है उनका वेतन बनाते हो। जो भी हो वह रोज़ सवेरे छ बजे के लगभग निकल जाते और रात आठ बजे तक लौटते। माँ उनके लिए एक डिब्बे मे कुछ खाना आदि बनाकर रख देती जिसे वे थैले मे डालकर ले जाते। उसीमे उनका चश्मा, कुछ कागज़-पेन्सिल आदि रहते। रात को वे काफी थके हुए लौटते और बाथरूम आदि से निपटकर हाथ-मुँह धोकर खाना खाने के पश्चात बिस्तर पर लेट जाते। वहाँ उनको कम ही पैसे मिलते रहे होगे, क्योकि घर के खर्च मे तगी पडने लगी थी। बडे भाई उन दिनो बी ए फाइनल मे थे। अपनी पढाई के अलावा कुछ ट्यूशने आदि भी वह करते थे। मगर घर का खर्च फिर भी मुश्किल ही से चल पाता था। मंझले भाई इन्टर मे पढते थे। उनको घर से जैसे कुछ लेना देना ही नही था।

जाने को तो मै रोज़ स्कूल चला जाता, परन्तु पढाई मेरे बस की नही लग रही थी। मेरी समझ में शायद ही कुछ आता। नतीजा यह हुआ कि मैने फिर आवारागर्दी शुरू कर दी। कभी बुलबुल पालता, कभी बटेर तो कभी तीतर। छोटा-मोटा जुआ भी मै खेलने लगा था। स्वाभाविक था मुझे पैसो की कमी पडने लगी। और मैने चोरी शुरू कर दी। घर मे ही माँ के बक्से से रुपये निकाल ले जाना बाये हाथ का खेल था। उन्हे शायद पता भी नही चल पाता था।

पहली बार मैने जो चोरी की वह बुलबुल खरीदने के लिए थी। मुहल्ले मे बहुत-से लोग बुलबुल पाले थे। लोहे के स्टैन्ड पर उसे बिठाये हुए इधर-उधर घूमते रहते। कभी ताश पत्ते खेलते तो स्टैन्ड को वही ज़मीन पर या फिर किसी पेड आदि में गाड देते। बुलबुल उसी स्टैन्ड

पर इधर-उधर फुदका करती। मुझे देखने मे बहुत अच्छा लगता। आखिर मैने तय किया कि मैं भी बुलबुल खरीदूंगा। मगर मेरे पास पैसे नही थे। स्कूल की फीस मैं मारना नही चाहता था। क्योंकि यह मैंने निश्चय कर लिया था कि और जो भी हो स्कूल से नाम नहीं कटने दूंगा।

मैने माँ से रुपये माँगे भी। परन्तु उन्होने इनकार कर दिया। आखिर मैने तय किया कि उनके बक्से से रुपये चुराऊँ। इसके लिए कई दिनो तक मैं सोचता रहा। एक बार तो बक्सा खोलते-खोलते मैने बन्द कर दिया। मगर बुलबुल पालने के लिए मेरा दिल मचल रहा था। आखिर एक दिन जब माँ रसोई मे खाना बना रही थी, और लोग कही बाहर गये हुए थे, मैंने उनके बक्से से पाँच का एक नोट निकाल लिया। दो-तीन दिन तक उस नोट को मैं घर मे इधर-उधर छिपाये रहा। तब मुझे विश्वास हो गया कि माँ को इस बारे मे कोई शक नही हुआ है तो मैं उसीसे बुलबुल खरीद लाया। माँ को तब भी शक नही हुआ। उनको मैंने बताया कि मै एक लडके से जुए मे जीतकर लाया हूँ। पिता ने देखा तो कुछ बिगडे-बिगडाये जरूर, मगर अधिक कुछ नही कहा। चिडिया पालने का उन्हें खुद शौक जो था।

पूरा साल इसी तरह बुलबुल-बटेरबाज़ी मे बीता। छमाही इम्तहान में मैं दो विषयो मे फेल था। मेरा पिछला रेकार्ड देखते हुए यह काफी तरक्की थी। पिता मुझपर बिगडे नही बल्कि उन्होने कहा कि इन दो विषयो, अग्रेजी और गणित मे मै अधिक मेहनत करूँ और बडे भाई से पूछ लिया करूँ। दो-चार मरतबे बडे भाई ने पिता के कहने से मुझे पढाने की कोशिश भी की। परन्तु मैं कुछ इतना बोदा था कि वह ज़रा देर मे ही खीझ उठने और मै फिर अपने हाल पर छोड दिया गया। घर के खर्च से पैसे इतने बचते नही थे कि मेरे लिए मास्टर लगाया जाये। मै फिर आवारागर्दी करने लगा जो पहले भी करता था।

सालाना इम्तहान के कुछ दिनो पहले पिता ने एक बार फिर कोशिश की कि मै मेहनत करके किसी तरह निकल जाऊँ। रात देर तक वह मुझे किताबो से उलझाये रखते। परन्तु कुछ बना नही। सालाना इम्तहान मे मैं फिर फेल हो गया। यह ऊँट की पीठ पर आखिरी तिनका था। घर मे सब लोगो ने तय किया कि अब मुझे भविष्य मे स्कूल भेजना बिला वजह पैसा फूंकना होगा। और पैसा फूँकने के लिए इफरात था नही। वैसे ही काफी कर्ज़ था जिसकी वजह से पहली तारीख को महाजन घर पर खड़ा रहता। और फिर बढती हुई महगाई ने और आफत कर रखी थी। आज से पन्द्रह-बीस साल पहले जब पाँच किलो का गेहूँ, रुपये का एक सेर देशी घी, चार किलो तक दूध, और डेढ रुपये सेर गोश्त मिलता था तब महँगाई की बात करना आज की स्थिति को देखते हुए एक मज़ाक ही लगेगा। परन्तु मुझे अच्छी तरह याद है कि पिता उन दिनो हर समय महँगाई का रोना रोते थे। माँ भी अक्सर यही कहा करती थी कि क्या जमाना आ गया है कि सोलह छटाक का घी और एक पसेरी का गेहूँ बिक रहा है। जो भी हो मेरी पढाई बन्द कर दी गयी। यह निश्चय किया गया कि मै हाई स्कूल की प्राइवेट परीक्षा दूं दो साल जमकर तैयारी करके। निर्णय मेरा तो था नही, वैसे अगर मेरा भी होता तो भी मुझे इससे कोई आपत्ति न होती। बाहर की दुनिया के जो दरवाज़े मेरे लिए अब तक खुल चुके थे उनमे काफी कुछ मेरे मन के मुताबिक थे। गोली पिनिया (जिसमे मेरी रुचि अब काफी कम हो चुकी थी), पतग, सिनेमा, बुलबुल, बटेर, कबूतर, ताश, जुआ आदि। शराब भी मै चख चुका था हालाकि उसमे कोई खास मज़ा मुझे अभी नही आया था। हाँ, सिगरेट मै अक्सर पी लिया करता था। इन्ही सब चीज़ो मे मेरा समय कटने लगा। पैसो की कमी को माँ के बक्से से चोरी करके पूरी करता। इसके अलावा बडे भाई की दो-एक मोटी-मोटी पुस्तकें भी मैं चुराकर बेच चुका था। चूंकि वह बाहर के कमरे मे रहते थे, अतः शक मेरे ऊपर न जाकर यही

सोचा गया कि बाहर का कोई आदमी उन्हें उठा ले गया होगा। असलियत मे अभी तक किसीके दिमाग मे आया ही नही था कि मैं चोरी भी कर सकता हूँ।

पिता जब नौकरी से रिटायर हुए थे तब मझले भाई इन्टर फाइनल में पढ रहे थे। वह बायलोजी लिये थे और उनकी डाक्टरी पढने की बड़ी इच्छा थी। बडे भाई आर्टस साइड में थे। पिता के रिटायरमेंट के बाद सब कुछ नये सिरे से सोचा जाने लगा। प्लान और योजनाएँ बनायी जाने लगी। फण्ड मे पिता को ज्यादा रुपया नही मिला था। काफी कुछ उन्होने पहले ही मकान बनवाने और बहन की शादी में उधार ले रखा था। बहन की शादी मे उन्होने बहुत पैसा खर्च किया था, परन्तु दुर्भाग्य से विवाह के एक वर्ष बाद ही प्रसव के समय किसी भयकर बीमारी मे उसकी मृत्यु हो गयी थी।

सारा मीजान मिलाकर इस नतीजे पर पहुँचा गया कि घर बैठकर खाने मे फण्ड का सारा रुपया अधिक से अधिक तीन वर्ष चलेगा। वैसे पिता यह चाहते थे कि मकान जो अधूरा पडा था उसे पूरा करा लिया जाए। यदि सम्भव हो तो तिमजले पर एक कमरा भी बना लिया जाय, क्योकि बडे भाई का वह जल्द से जल्द विवाह कर देना चाहते थे और विवाह के बाद उन्हे एक अलग कमरे की जरूरत पडती थी। इधर बड़े भाई एम.ए करना चाहते थे। एम ए करने के बाद उनका इरादा आइ ए एस वगैरह करने का था। मझले भाई डाक्टरी पढने के लिए जिद पकडे थे। ऐसी हालत मे फण्ड का रुपया डेढ वर्ष से अधिक नही चलना था। पिता जो दूसरी नौकरी करने लगे थे उससे भी कोई अतर नही पडा था, क्योकि शायद वहाँ उनको बहुत कम वेतन मिलता था। उन्होने तरह-तरह के बिजनेस भी सोचे जिनमे एक रिक्शा चलवाना भी था। परन्तु रिक्शा चलवाने मे रिक्शे की पूरी जानकारी होना जरूरी था। यह जानकारी न होने के ही कारण पिता के एक मित्र दो रिक्शे खरीदने के बाद उन्हे बेच चुके थे। क्योंकि आये दिन रिक्शेवाला उसमें

कुछ न कुछ टूट-फूट निकाल देता। आखिर यह तय पाया गया कि मकान के नीचे का हिस्सा किराये पर उठा दिया जाए जिससे तीस-चालीस रुपये की आमदनी होने की आशा थी। इसके अलावा बडे भाई ने कहा कि वह दो-एक ट्यूशनें और कर लेंगे। इस तरह यह उम्मीद की गयी कि सब कुछ ठीक हो जायेगा। मकान का ऊपर का हिस्सा भी बन जायेगा। बडे भाई एम.ए कर लेंगे और मझले भाई यदि उनके भाग्य मे हुआ तो डाक्टरी कर लेंगे। परन्तु किसीके भाग्य मे कुछ नही था। हाँ, मकान के ऊपर के हिस्से मे प्लास्टर वगैरह जरूर हो गया। सामने की बालकनी भी बन गयी। बडे भाई ने एम ए भी कर लिया, मगर बावजूद सारी कोशिशो के वह आइ.ए एस., पी सी एस. किसीमें निकल नही पाये। एक बार रिटेन मे क्वालीफाई जरूर किया, परन्तु इन्टरव्यू में रह गये। मझले भाई तीन मरतबा पी एम.टी. में बैठने के बावजूद सफल नही हो पाये।

इस सारे बीच मैं मौज करता रहा। जुआ मैं अब काफी लम्बा खेलने लगा था। सौ, डेढ-सौ की हार-जीत मेरे लिए कोई बडी बात नही थी। इसके लिए मैं माँ के दो-एक जेवर भी उनके बक्से से निकाल-कर बेच चुका था जो शुरू मे तो उन्हें पता नही चला, परन्तु बाद मे पता चलने पर इतना रोयी कि बेहोश हो गयी। उसी दिन मुझे अपने ऊपर बहुत ग्लानि हुई और मैंने तय किया कि जो भी हो मैं उन्हें जेवर बनवा-कर जरूर दूंगा।

बडे भाई के एम ए. करने तक घर की हालत काफी बिगड चुकी थी। पिता के फण्ड का सारा पैसा लगभग समाप्त हो चुका था। उनको किसी कारखाने मे जो दूसरी नौकरी मिली थी उससे तथा बडे भाई ट्यूशन वगैरह से जो लाते थे वह सब मिलाकर भी खर्च के लिए बिलकुल नाकाफी था। आई.ए.एस., पी.सी.एस. के सारे ख्वाब तो बडे भाई के बेकार हो ही चुके थे। अब वह नौकरी ढूंढने लगे। जहाँ जो भी मिले। आखिर उन्हे किसी दूसरे शहर में किसी स्कूल में मास्टरी

मिली और वह वहाँ चले गये। मझले भाई पी.एम टी की सारी कोशिश करने के बाद पालीटेक्नीक मे कुछ सीखने लगे।

मां का स्वास्थ्य पहले ही ठीक नही रहता था। इधर और बिगड गया था। पिता कारखाने की नौकरी मे सुबह सात बजे ही घर से निकल जाते थे। माँ को तड़के ही उठकर उनके लिए नाश्ता-भोजन का प्रबन्ध करना पड़ता था। पिता का स्वास्थ्य भी उनके रिटायर होने के बाद से काफी तेज़ी से ढलने लगा था। उनके अच्छी खासी तोंद थी जो इन तीन वर्षो मे ही न जाने कहाँ गायब हो गयी थी। माँ बड़े भाई के विवाह के लिए जिद करने लगी थी। उनका कहना था कि घर में बहू आ जाएगी तो घर का काम-काज सभाल लेगी, नही तो किसी देखने-सुननेवाले के अभाव मे सारी गृहस्थी चौपट हो रही थी। बहू आने से उनका स्वास्थ्य भी सुधर सकता था। पिता भी यही चाहते थे। दो-एक जगह बात-चीत भी चली थी। परन्तु बडे भाई विवाह करने के लिए तैयार नही थे। विवाह के नाम से ही उन्हे उलझन-सी होती थी। पिता तो इस बात को लेकर चिन्तित थे ही। माँ तो बाकायदा रोने-धोने लगती। जब कभी बडे भाई छुट्टी या इतवार को घर आते वह उनके सामने बैठकर रोने लगती। दो-चार बरस की मेरी ज़िन्दगी और है, वह कहती, बहू का मुंह देख लूं, नही तो मरने के बाद भी मेरी आत्मा को शान्ति नही मिलेगी। अपने बाप की तरफ देखा, कैसा दिन-दिन भर खटकर घुलते जा रहे हैं। बहू आ जाएगी तो उनको भी ठीक से खाना-पीना मिलेगा। शायद उनकी तन्दुरुस्ती सुधर ही जाए। जो हालत उनकी है उसमे तो साल, डेढ साल चलना भी उनका दूभर लगता है। बडे भाई सिर्फ एक बात कहते कि जब अभी घर का खर्च नही चल पा रहा है तो बहू ले आने के बाद तो और मुश्किल हो जाएगी। माँ उनको समझाती कि एक आदमी का खाना तो वैसे ही रोज़ बेकार होता है और फिर ऐसी तगी तो नही है कि एक आदमी और खाना न खा सके घर मे। भगवान जितने मुंह बनाता है उनके लिए खाना भी पैदा करता है।

और फिर यही साल, डेढ साल की तो बात है। तब तक रम्मू, यानी मेरे मझले भाई की ट्रेनिंग पूरी हो जाएगी। भगवान की कृपा से कही न कही नौकरी लगेगी ही। और आज तुम हाँ कहोगे तो शादी तय होते-होते साल-डेढ साल तो लग ही जाएगा। तुम्हारे बाप की कितनी साध है तुम्हारी शादी करने की। पता नही क्या-क्या उन्होने सोच रखा है। इस महँगाई मे वह सब तो शायद न हो पाये। मगर उनकी साध तो पूरी हो जाएगी और फिर बिना शादी के तुम रहोगे नही। देर-सबेर सभी करते है। यह तो भगवान का नियम है। उससे कौन बचा है? भगवान खुद नही बचे है।

आखिर माँ का रोना-धोना काम आया और बडे भाई ने विवाह के लिए हामी भर दी। नतीजा यह हुआ कि उनकी शादी की बातचीत जो कभी-कभार दूर-दराज कही चल जाती थी उसमे तेजी आ गयी। आये दिन घर पर लडकियो के फोटो आने लगे। माँ जो फोटो देखती उसीको पसद कर लेती। परन्तु बडे भाई थे कि एक के बाद दूसरा फोटो रिजेक्ट करते चले जा रहे थे। चार-पाँच फोटो देखने के बाद माँ का सब्र टूट गया। वह बडे भाई पर बिगडने लगी—नही तुमको शादी करनी है तो ऐसा कह दो। क्यो खामख्वाह लडकीवालो की बेइज्जती करते हो। तुम्हारे लिए दूर की परी तो कोई बैठी नही है। और अगर कोई तुम्हारी निगाह मे हो, तो मुझे बताओ। उसीसे तय कर दिया जाए। दूसरी जाति की हो तो भी मुझे कोई एतराज नही है। भोगना-बरतना तो तुमको ही पडेगा। मुझको क्या आज मरी कल दूसरा दिन। रिश्ते-नातेदार जो कोई जो कुछ कहेगे, मै सब सुन लूँगी। और वह फिर रोने लगती। आखिर बडे भाई ने बिलकुल हथियार डाल दिये। उन्होने माँ को ब्लैंक चेक दे दिया—जो तुम्हारी मर्जी हो करो। मुझको तारीख बता देना, मैं जाकर भावरे डाल लाऊँगा।

इस बीच बडे भाई को हमारे ही नगर मे दूसरी नौकरी मिल गयी थी और वह वहाँ से मास्टरी छोड़कर यही आ गये थे। नये सिरे से

उनकी शादी के लिए लडकियो के फोटो ही नही, बल्कि लडकियाँ भी देखी जाने लगी, अत मे आगरे के किसी परिवार में उनका विवाह तय हो ही गया ।

बरीक्षा हुई । लडकीवाले पाँच सौ एक रुपये नकद, चान्दी का कटोरा, ढेर सारी मिठाई और फल लाकर बरीक्षा करने आये । माँ को पच्चीस रुपये नेग भी मिला । हम दोनो भाइयो को दस-दस रुपये मिले । पिता को भी जरूर कुछ मिला होगा जो मुझे याद नही । उस दिन घर मे सभी लोग बहुत प्रसन्न थे । पिता ने अपने कुछ मित्रो और रिश्तेदारो के साथ बैठकर शराब भी पी । मैं दौड-दौडकर सलाद की प्लेटें, गोश्त, सोडा, पानी आदि पहुँचाता रहा । एक-एक घूट मुझे और मँझले भाई को भी मिली ।

परन्तु उसी दिन माँ को उनके बक्से से जेवर गायब होने की बात का पता चला गया । बडे भाई की होनेवाली बहू के लिए जेवर बनवाने की बात पर उन्होने अपने सारे जेबर निकालकर देखे । उन्हीको तोड़-बदलकर नये जेवर बनने थे । माँ ने अपना सारा बक्सा छान मारा, मगर उसमे से सोने का एक हार और कान के सोने के झूमर गायब थे । माँ ने घर के और बक्से भी खोलकर ढूंढ डाले । परन्तु जेवर कही हो तब तो मिलें । जेवर बेचकर तो मै जुए मे हार चुका था । माँ रोने लगी और रोते-रोते बेहोश हो गयी । हर प्रकार की सम्भावनाओ पर विचार किया जाने लगा । घर मे पिछले दिनों कौन-कौन आया ? महरी तो कभी अन्दर के कमरे मे नही गयी ? माँ ने जेवर कब किन अवसरो पर पहने ? पिछली बार जब वह अपने मायके गयी थी तो जेवर ले गयी या नही और ले गयी थी तो वहाँ से लौटाकर लायी थी या नही ? मझले भाई ने मेरे उपर भी शक किया । क्योकि इस बीच मैने अपने लिए एक कमीज़-पतलून सिलवाया था और नये जूते भी लाया था । पिता ने मुझसे पूछा भी । माँ ने भी कसमें खिलवायीं, परन्तु मै साफ इनकार कर गया । हाँ अन्दर ही अन्दर मुझे अपने मन मे बहुत कोफ्त हो रही थी और मैंने तय किया

कि जैसे भी हो मैं माँ के लिए इससे अधिक जेवर बनवाकर दूंगा। मेरे पास उस समय लगभग दो सौ रुपये थे। मैने उसी समय सारी योजना बना ली कि छुन्नू बाबू के घर जाकर बड़े जुए मे खेलूंगा। छुन्नू बाबू मुहल्ले के पढे-लिखे बदमाशो मे थे। घर पर जुआ खिलवाते थे। बड़े-बडे सेठ लोग वहाँ आते थे। एक दिन मे पाँच-सात सौ जीतना कोई बडी बात नही थी।

रात देर तक घर मे माँ का रोना-धोना चलता रहा। बडे भाई का विवाह तय हो जाने की सारी खुशी अचानक मनहूसियत मे बदल गयी। रात को माँ ने खाना भी नही खाया। बडे भाई और पिता उनको देर तक समझाते रहे। परन्तु वह बिना खाना खाये ही रह गयी।

दूसरे दिन ही मैं छुन्नू बाबू के घर पर जुआ खेलने गया। वहाँ नाज मडी के दो-तीन अढतिये, ट्रास्पोर्ट कम्पनी का एक मालिक, किसी सिनेमा का एक मैनेजर, शराब के ठेकेवाला कोई व्यक्ति तथा कई और लोग आते-जाते थे। फलश होती थी। दो सौ कुछ रुपयो से मैंने खेलना शुरू किया। चार सौ तक मैं जीत गया। मैंने सोचा भाग्य अच्छा है अत खेलता रहा। सोचा जैसे ही एक हज़ार हो जायेगे उठ जाऊँगा। परन्तु होना कुछ और ही था। पाँच बजे से खेलना शुरू किया था। रात ग्यारह बजे निकला तो मेरे पास एक पैसा भी जेब मे नहीं था। हाँ, छुन्नू बाबू से बीस रुपये मैंने उधार लिये थे। वही थे। उनकी बाहर आकर मै शराब पी गया और घर जाकर बिना खाना खाये बिस्तर पर लेट गया। बहुत अफसोस हो रहा था मुझे कि चार-पांच सौ जीतकर मै उठ क्यो नही गया।

अब मेरी जेब बिलकुल खाली थी। परन्तु मैं प्रण कर चुका था कि जैसे भी हो मैं माँ को जेवर खरीदकर लाकर दूंगा। इसके लिए क्या किया जाए मैं रात-भर सोचता रहा। छुन्नू बाबू के यहाँ दुबारा जाने के लिए रुपये चाहिए थे जो मेरे पास थे नही। इसके लिए एक ही रास्ता

था कि मैं माँ का कोई और जेवर चुराऊँ। परन्तु यह सम्भव नहीं था। माँ अब अपनी चाभियाँ बडे एहतियात से रखने लगी थी, और फिर घर में मेरे ऊपर लोगो को शक भी हो गया था। वैसे भी मैंने प्रतिज्ञा कर ली थी कि अब से घर मे चोरी नही करूंगा।

दूसरे दिन मैंने अपने सारे जाननेवालो से उधार भी मांगा, परन्तु किसीने मुझे फूटी कौडी तक भी नहीं दी। अपने दो-एक मित्रो से मैंने पूरी बात भी बता दी। परन्तु उनके पास कुछ था नहीं जो वे मेरी मदद करते। इसी सारे चक्कर मे मेरी मुलाकात बद्री से हुई। बद्री अफीम और गाजे की स्मगलिग करता था। पाँच-सात सौ रुपये, उसने मुझे बताया, चुटकी बजाते मिल सकते हैं। परन्तु इसके लिए पूंजी लगानी पडेगी। बाराबंकी से तीन सौ रुपये सेर अफीम खरीदो और नागपुर, बबई मे छ सौ रुपये बेच आओ। और दूर क्यो जाओ कानपुर मे ही पाँच, साढे पाँच के भाव बिक जाएगी। यह जुगत तो बहुत आसान थी, परन्तु इसके लिए रुपये चाहिए थे। तभी मुझे ध्यान आया कि बडे भाई की बरीक्षा मे आये हुए पाँच सौ रुपये माँ के पास रखे हैं। यदि वह उन्हे तीन-चार दिनो के लिए दे दें तो काम बन जाए।

मैंने माँ को समझाना शुरू किया। उन्हें मैंने यह तो नहीं बताया कि उन रुपयो से मैं अफीम का धधा करूँगा, परन्तु मैंने उन्हे यह जरूर समझाया कि यदि वह चार-पाँच दिनो के लिए रुपये मुझे दे दे तो मैं जेवर लाकर दे दूंगा। शुरू मे तो वह राज़ी नही हुई। परन्तु बाद में मेरे काफी समझाने पर मान गयी और बिना पिता या बडे भाई को बताये उन्होने पाँच सौ रुपये मुझे दे दिये। इस शर्त पर कि जेवर आएँ, परन्तु चार दिनों बाद रुपये उन्हे वापस मिल जाएँ। मैंने उन्हें वादा कर दिया।

रुपये लेकर मैं सीधे बद्री के पास गया। उसने पूछा कितने रुपये हैं तो मैंने रुपये उसके सामने निकालकर दिखा दिये। मैं समझ गया कि वह मेरे ऊपर विश्वास नही कर रहा है। परन्तु वह चार दिन की मुहलत मांगने लगा। कहने लगा कि उसे कुछ जरूरी काम है।

अगले हफ्ते ही चल पाएगा। मैंने उससे कहा कि वह तुरन्त चल दे, नहं तो मुझे पता दे दे मै अकेला चला जाऊँगा। आखिर वह दूसरे दिन सुबह चलने के लिए राजी हो गया।

एक बार मेरे मन में आया कि इस रात मैं छुन्नू बाबू के यहाँ चास क्यो न ले लूँ। परन्तु फिर मै टाल गया, क्योकि इस बार अगर रुपये हार जाता तो दुबारा कही से मिलने नही थे। अत मैंने रुपये लाकर माँ को वापस दे दिये। कहा कि कल सुबह वह मुझे दे दे। इस तरह मैंने सोचा कि माँ का विश्वास भी अर्जित कर लूँगा।

दूसरे दिन सुबह ही मै रुपये लेकर बद्री के साथ रवाना हो गया। कोई ग्यारह बजे हम लोग बाराबकी पहुँच गये। स्टेशन से तीन-चार मील हम लोग इक्के पर गये। वहाँ से कोई डेढ दो मील पैदल चलकर एक गाँव मे पहुँचे। बद्री वहाँ के लोगो का पुराना परिचित लग रहा था। कई लोगो से उसकी दुआ-सलाम हुई और वह उनसे किसी खास व्यक्ति का पता पूछता रहा। आखिर उन लोगो के बताये अनुसार हम लोग खेत-खलिहान पार करते हुए एक ऐसे स्थान पर आये जहाँ ईख पेरी जा रही थी और गुड बनाने के लिए बडे-बडे कडाहे चढे थे जिनमे ईख का रस उबल रहा था। वह व्यक्ति जिससे मिलने हम लोग गये थे कोल्हू के डडे पर बैठा बैल हाँक रहा था। बद्री को देखते ही उसने बैल की पूँछ मरोडकर उसे कोई मीठी-सी गाली दी और उसकी पीठ पर सण्टी जमाकर डडे से उचककर कोल्हू के घेरे से बाहर आ गया। बद्री मुझे वही खडा रहने को कहकर उसे एक ओर ले जाकर बात करने लगा। थोडी देर मे वह मुँह बनाता हुआ लौट आया और बोला—इनके पास तो माल है नही।

—थोडा भी नही है? मैंने उस आदमी से पूछा जो अब तक हमारे निकट आ गया था।

—थोडा-सा छटाक, आधा पाव पडा होगा। कल शाम को ही कलकत्ते का एक ग्राहक आया था उसे दे दिया।

मुझे बडी नाउम्मीदी हुई। दस-पन्द्रह रुपये अब तक किराये आदि में खर्च हो चुके थे।

—किसी और के पास भी नही हैं? मैने उससे पूछा।

—बात यह है कि अपने माल की तो मै गारण्टी लेता हूँ। दूसरे के बारे मे कह नही सकता। और फिर कौन जाने भाव क्या लगाये वे लोग। हमारे तो यह पुराने गाहक है। उसने बद्री के लिए कहा।

बद्री भी उसे समझाने लगा—अब इतनी दूर आये हैं तो कही न कही से दिलवा दो थोडा। हम लोगो को यही कोई डेढ-दो सेर चाहिये।

बैल चलते-चलते रुक गया था। उसने लपक कर एक सण्टी उसके जमा दी और लौटकर फिर हमसे बात करने लगा—अच्छा तुम लोग यहीं रुको, मैं जाता हूँ, अगर कही कुछ माल मिला तो लेके आता हूँ। कितना चाहिये?

—क्या भाव मिलेगा? बद्री ने पूछा।

—तीन सौ से कम न होगा। हमारी बात और है, हम तो ढाई सौ मे दे देते। और नही तो दो-तीन दिन रुक जाओ। आके ले जाना।

लेकिन मैं रुकने के लिए तैयार नही था—कुछ कम करवा दो भाई। तुम तो अपने आदमी हो। मैंने उससे कहा।

बद्री मुझे एक ओर ले गया—दो-तीन दिन बाद क्यो नही आते। खामखाह तीस चालीस रुपये ज्यादा का भाव देना पडेगा।

—माल तो गडबड नही होगा? मैंने पूछा।

—सो तो मैं देख लूंगा। बद्री ने कहा।

—तो फिर ले लो। कौन बार-बार आयेगा।

हम फिर उसके पास आ गये जो एक बार फिर बैल को सण्टी जमाकर लौटा था।

—देखो तुमसे तो कुछ छुपाना नही है। और दो-तीन दिन हम लोग रुक नही सकते। तुम जाकर माल ठीक-ठीक देख लो और जितना कम हो सके कम करा दो।

—अच्छा लाओ रुपये दो। उसने कहा।

—दे दो भई रुपये इनको। बद्री ने मुझसे कहा।

मैने रुपये निकाल तो लिये, परन्तु उसे दिये नही। कितने रुपये दे दूं? मैंने बद्री से पूछा। फिर कहा—इनसे कहो माल ले आयें। रुपये कोई भागे जाते है।

—ले आओ न। बद्री ने भी उससे कहा। रुपये यहाँ आकर ले लेना।

—कितना ले आयें। उसने पूछा।

—डेढ सेर ले आओ। बद्री बोला।

उसने चलते-चलते बैल को एक और सण्टी जमा दी और लपकता हुआ एक ओर चला गया।

सण्टी मैने उससे चलते समय ले ली थी। उसे लेकर मैं कोल्हू के डंडे पर बैठकर बैल हाँकने लगा। मगर तीन चक्कर के बाद ही मुझे चक्कर-सा आने लगा और मैं निकलकर बाहर आ गया। बद्री ईख के ढेर पर बैठकर बीडी पीने लगा था। दो-एक लोग वहाँ और थे जो रस खौलने का काम देख रहे थे। बैल चलते-चलते रुक गया और जुगाली करने लगा।

थोडी देर मे वह व्यक्ति अंगोछे मे माल लेकर लौट आया। बद्री ने उसे खुलवाके देखा। सूंघा। मूंग के दाने बराबर थोडा-सा लेकर मुंह में रखकर चखा और तब उससे पूछा कि उसे कितने पैसे देने होगे।

—तीन सौ के भाव मिला है। उसने कहा।

—पौने तीन सौ लो। बद्री ने कहा।

—कम न होगा भाई। उसने कहा, मेरा माल होता तो कोई बात नही थी।

खाखिर दो सौ अस्सी का भाव तय हुआ। चार सौ बीस रुपये मैंने निकालकर उसे दिये और माल थैले मे रखकर जो मैं अपने साथ लाया था, हम लोग वापस लौट पडे।

बद्री ने कहा कि माल काफी अच्छा है। सात सौ से नीचे न जायेगा।

फिर उसी तरह पैदल, फिर इक्का और तब बस पकड़कर हम लोग वापस आ गये। घर पहुँचते-पहुँचते हमे सात बज गया। बीच में स्टेशन पर हमने खाना भी खाया। पान-सिगरेट तो बराबर चलता रहा जिसका सारा खर्च मैंने ही दिया। घर लौटकर आया तो पाँच सौ मे से कोई बीस रुपये मेरे पास बचे थे।

—माल रखोगे कहाँ ? बद्री ने मुझसे पूछा। तुम्हारे यहाँ दिक्कत हो तो हमारे पास छोड दो।

—रखने की तो कोई दिक्कत नही है। मगर इसे बेचने कब चलोगे ? मैंने उससे पूछा।

—देखो आज ही मैं चला आया बहुत गलत किया। मेरी बीवी की तबियत बहुत खराब है। अब दो-तीन दिन इन्तजार करना पड़ेगा। जब तक उसकी तबियत ठीक न हो जाये। वैसे तुम्हे अपने घर मे यह सामान रखने मे परेशानी हो तो मुझे दे दो।

—नही, ऐसी कोई बात नही है। मैंने कहा।

नीचे का मकान बडे भाई की शादी के सिलसिले मे किरायेदारों से खाली करा लिया गया था। वहाँ कोई रहता नही था। वही नीचे कोठरी में एक दुछत्ती थी। थैला ले जाकर मैंने उसी दुछत्ती में छिपा दिया।

मुझे लगा कि बद्री कुछ बदमाशी कर रहा है। चार-पाँच दिन हो गये मगर बार-बार यही कहता रहा कि उसकी पत्नी की तबियत ठीक नही है। इधर माँ परेशान होने लगी। उन्होंने मुझसे पूछा कि मैंने रुपये का क्या किया। परन्तु मै उन्हे टालता रहा। आखिर जब एक

हफ्ते से ऊपर हो गया और बद्री चलने को तैयार नही हुआ तो मुझे माँ को पूरी बात बतानी पड़ी, अन्यथा वह यह समझ रही थी कि रुपये मैं जुए में हार गया हूँ। मगर मेरे बताने का परिणाम उल्टा ही निकला। अफीम का नाम सुनते ही उन्हे गश आने लगा और उन्होने मुझसे कहा कि तुरन्त इसे यहाँ से हटाओ। जैसे भी, जहाँ भी हो इसे ले जाओ। घर मे मत रखो। आज तक खानदान मे यह नही हुआ। अब क्या बुढापे में अपने बाप को जेल भी भेजोगे क्या? मैंने उन्हे दिलासा दिया और तीन दिन की मुहलत माँगी। मगर बद्री इन तीन दिनो मे भी जाने को राजी नही हुआ। अब मुझे भी परेशानी होने लगी क्योकि यह अफीम मेरे लिए दो कौड़ी की थी। और अब तो मुझे यह भी शक होने लगा कि यह अफीम है भी या नही। तभी माँ का सब्र टूट गया और उन्होने सारी बात पिता को बता दी और पिता ने बड़े भाई को। माँ से बात होने के तीसरे दिन जब शाम को घूम-घामकर मैं घर आया तो सभी के चेहरो पर चिन्ता की रेखाएं खिंची हुई थी। मुझे सारा का सारा वातावरण तनावपूर्ण लग रहा था। परन्तु किसीने मुझसे कुछ कहा नहीं। आखिर जब सब लोगो ने और मैने भी खाना-खाना खा लिया तो बड़े भाई ने बात छेड़ी—अफीम कहाँ है? उनका सीधा प्रश्न था।

मैंने माँ की ओर देखा। वह रोने लगी थी। कैसी अफीम? मैंने कहा।

—पाँच सौ रुपये जो तुम माँ से ले गये उसका क्या किया?

आखिर मुझे सारी बात बतानी पडी। मुझे माँ के ऊपर गुस्सा भी आया कि उनसे दो-चार दिन और सब्र नही किया गया।

बड़े भाई ने अतिम फैसला दे दिया—यह अफीम कल तक यहाँ घर से हट जाये और पाँच सौ रुपये वापस आ जाये। समझे?

पिता सारे समय वही मौजूद थे। परन्तु उन्होने कुछ कहा नहीं।

—ठीक है। मैने उत्तर दिया।

—ठीक नहीं, कल शाम पाँच बजे तक रुपये वापस आ जायें। बड़े भाई ने दुबारा कहा।

—सुन लिया। मैने उत्तर दिया।

यह पहला मौका था जब पिता की मौजूदगी मे बडे भाई इस तरह बात कर रहे थे। मै समझ गया कि अब इस घर का प्रभुत्व पिता के हाथो से निकलकर बडे भाई के हाथों मे आ गया है। वैसे भी मै बडे भाई का काफी लिहाज करता था। वह शुरू से ही काफी रिजर्व रहा करते थे और घर के मामले मे ज़रा कम ही बोलते थे। परतु इस बार वह बहुत साधिकार बाते कर रहे थे।

—सुन लिया नही। अगर कल रुपये न आ गये तो अपनी शकल मत दिखाना। उन्होने कहा।

—अच्छा। मैने कहा।

मै समझता था कि वह पूछेगे कि अफीम रखी कहाँ है और शायद उसे मँगवा कर देखे, लेकिन उन्होने ऐसा कुछ नही किया और बात वहीं समाप्त कर दी।

मुझे रात-भर नीद नही आयी। सुबह होते ही मै बद्री के घर पहुंचा और कहा कि जैसे भी हो जिस भाव हो वह अफीम को बिकवा दे। उसने कुछ हीला-हवाला किया, परन्तु मै उसके पीछे पड गया। आखिर वह मेरे साथ कानपुर चलने को तैयार हो गया। वैसे उसने कहा कि अगर नागपुर या कलकत्ता चल सकते तो माल ज्यादा अच्छे दामों पर निकलता। परन्तु मैने मना कर दिया। कानपुर जाकर मै शाम तक लौट सकता था। जब कि नागपुर या कलकता जाने और वहाँ से लौटने में काफी दिन लगते थे।

बद्री ने मुझसे कहा कि माल लेकर सीधे स्टेशन आ जाओ। ग्यारह बीस पर एक गाडी जाती थी, उसीसे जाने की बात तय हुई। बद्री ने यह भी कहा कि एक-आध जोड़े कपड़े ले लेना। हो सकता है एक दिन से ज्यादा लग जाये। मैने ऐसा ही किया। एक थैले मे अफीम की

गठरी रखी और उसीके ऊपर एक जोड़ा कमीज़-पतलून भी रख ली। किराये के रुपये मेरे पास थे नही। जो बीस रुपये बाराबकी से लौटने पर बचे थे उन्हे मै अब तक खर्च कर चुका था। यह भी मै जानता था कि बद्री रुपये खर्च करने से रहा। अतः बावजूद यह प्रतिज्ञा करने के कि घर में चोरी नही करूँगा, मैने बडे भाई की जेब से पाँच रुपये का एक नोट निकाल लिया। शायद मै और भी निकालता, परन्तु अधिक रुपये उनकी जेब मे थे नही। कानपुर का किराया उन दिनो एक रुपये सत्तर पैसे या ऐसे ही कुछ पडता था। अत मैने सोचा, जाने का प्रबन्ध तो हो ही जायेगा। लौटने की बात देखी जायेगी।

कोई साढे दस बजे मैं स्टेशन पहुँच गया। बद्री ने जहाँ मुझे मिलने को कहा था वही मिल गया। मैने कानपुर के दो टिकट खरीदे और प्लेटफार्म पर आकर एक बेंच पर बैठ गया। बद्री भी मेरी बगल मे बैठ गया। ट्रेन आने मे कुछ देर थी। तभी एक कान्स्टेबुल सामने से टहलता हुआ आया और हमारे पास आकर रुक गया।

—आप लोग कहाँ जा रहे हैं? उसने हमसे पूछा।

तबियत तो आयी कि कह दूं, तुमसे क्या मतलब है, परन्तु मैंने जवाब दिया—कानपुर।

—इस थैले मे क्या है? उसने अगला प्रश्न किया।

इस बार मैने कह ही दिया—तुमसे मतलब?

तभी बद्री उठकर भागने लगा। मगर उसने बद्री को बाह से पकड़ लिया और मुझे भी।

—छोडो मुझे, मैने कहा—तमीज़ से बात करो।

—अभी सारी तमीज़ पता चल जायेगी। चलो थाने। उसने कहा।

मैं कुछ डरा जरूर, परन्तु यह बात न उस समय मेरी समझ मे आयी थी, न आज कि जो सरकार लोगो के लिए शिक्षा, नौकरी, रोज़ी-रोटी का प्रबन्ध नही कर सकती वह इस तरह के प्रतिबन्ध क्यो लगाती है कि कोई

अफीम नही बेच सकता, जुआ नही खेल सकता या किसी भी प्रकार का और धधा नही कर सकता ।

कान्स्टेबुल हम लोगो को लेकर बाहर आ गया । —टिकट यही वापस कर दो, नही तो बेकार जायेगे । उसने हमसे कहा ।

मैं उससे और उलझता परन्तु बद्री ने राय दी कि मैं टिकट वापस कर दूं । अत मैने वैसा ही किया । टिकट वापस करके हम लोग स्टेशन के पार सडक पर आ गये ।

कान्स्टेबुल ने थैला मेरे हाथ से ले लिया था । —तुम साले, वह बद्री से कह रहा था, शरीफ घरो के लडको को बरबाद करते हो । चलो आज तुम्हारी चर्बी न उधेडूं तो मेरा नाम नही ।

बद्री गिडगिडाने लगा—इस बार छोड दो हवलदार साहब ! आइन्दा से गल्ती न होगी । उसने कहा ।

—छोड दे? उसने कटाक्ष के स्वर मे कहा—है क्या इसमे, यह तो बताओ । उसने थैले के बारे मे पूछा ।

—मुझे नही मालूम हुजूर ! थैला तो इनका है । उसने मेरे लिए कहा ।

—इनका है ? उसने दुहराया । क्यो बे, इसमे क्या है ? उसने मुझसे पूछा ।

मैंने कोई जवाब नही दिया ।

—देखो तुम शरीफ घर के लडके लगते हो । इस बार छोड़ देता हूँ । आइदा से फिर कभी ऐसी हरकत न करना । और तुमको तो साले, कम से कम सात साल की कराऊँगा अब की बार । उसने बद्री के लिए कहा । तब मुझसे बोला—चलो, भागो तुम यहाँ से ।

—मेरा थैला ? मैने कहा ।

—थैला ! अच्छा तो तुमको भी हवालात देखनी है ?

—क्यों ?

—थैला-वैला कुछ न मिलेगा। जाते हो अब कि तुमको भी थाने ले चलूं।

—मेरा कोई कसूर नही। बद्री ने कहा।

उसने बद्री के एक झापड दिया।

मै वाकई डर गया और तुरन्त वहॉ से चला आया। टिकट वापस करने से लौटे पैसे भी कान्स्टेबुल ने ले लिये थे। अत मैं चुपचाप पैदल वहाँ से लौट आया।

लौटकर मै अपनी गली के सामनेवाले पार्क मे आकर बैठ गया। मेरी समझ मे नही आ रहा था कि मैं क्या करूं। दो-ढाई घटे बैठने के बाद मै बद्री के घर गया परन्तु वह कहाँ नही था। मै समझ गया पुलिस ने उसे बन्द कर दिया है।

मुझे अपने चारो तरफ बिलकुल अधेरा नजर आने लगा। आठ सौ, हज़ार न सही, इतनी तो मुझे उम्मीद थी ही कि पाँच सौ रुपये मैं शाम को घर मे वापस कर दूंगा। अब मै क्या करूं मेरी समझ मे नही आ रहा था। दिन-भर भूखा-प्यासा इधर-उधर घूमता रहा। आखिर जब पाँच बजने को आये तो मुझे चिन्ता होने लगी। मैं जानता था कि बडे भाई आफिस से आकर पहला प्रश्न मेरे बारे मे ही करेगे। मैं बहुत परेशान था। अफसोस, ग्लानि सभी मुझे हो रहा था। एक बार तो मन मे आया कि जाकर आत्महत्या कर लूं। किसी नदी-कुएँ मे फाद पड़ूं या फिर रेल के नीचे आ जाऊं। परन्तु फिर बाद मे तय किया कि घर छोडकर कही चला जाऊँगा।

मेरी जेब मे चार-छः आने पैसे थे। पोस्ट आफिस जाकर मैंने एक पोस्टकार्ड खरीदा और उसपर मॉ के नाम एक चिट्ठी लिखी कि मै घर छोड़कर जा रहा हूँ, वह मेरी चिन्ता न करे। मन मे सोचा कि चिट्ठी पोस्ट करने के बाद सीधे स्टेशन जाऊंगा और जो भी पहली गाडी जहाँ के लिए भी मिलेगी मैं बिना टिकट बैठ जाऊँगा। परन्तु जैसे ही चिट्ठी

लेटरबाक्स मे डाल रहा था कि किसीने पीछे से मेरा कालर पकड लिया। मैने मुडकर देखा। बडे भाई थे।

चिट्ठी उन्होने मेरे हाथ से ले ली। —यहाँ क्या कर रहे हो? उन्होने मुझसे पूछा।

मै चुप रहा। तब तक उन्होने चिट्ठी पढ ली थी। मुझसे बोले—चलो घर चलो।

—मै न जाऊँगा। आप मुझे छोड दीजिए। मैंने उनसे कहा।

परन्तु वे मुझे बाँह से पकडकर घर ले आये। घर आकर मुझे चारपाई या कुरसी पर बिठा दिया गया और जैसे पुलिस किसी मुलजिम से पूछताछ करती है उस तरह मुझसे पूछताछ की जाने लगी। माँ, पिता, बडे भाई, मँझले भाई सब वहाँ जमा हो गये थे। मैने तय कर लिया था कि किसीको कुछ नही बताऊँगा और पहला मौका मिलते ही घर से भाग जाऊँगा। साथ ही यह भी सोच रहा था कि कहो वह पुलिसवाला मुझे दिख गया तो उसके पेट मे चाकू उतार दूँगा चाहे फिर मुझे फाँसी ही क्यो न हो जाये। अत मै चुपचाप बैठा रहा और सब मुझसे सवाल करते रहे। बीच-बीच मे माँ रोने लगती और मुझे समझाने लगती कि मैं पूरी बात बता क्यो नही देता। परन्तु मै खामोश बैठा रहा। तभी बडे भाई ने मेरे एक झापड दिया। इतने जोर से कि मैं गिरते-गिरते बचा।

काफी देर तक मैं हीले-हवाले करता रहा, परन्तु अत मे मुझे सारी बात बतानी पडी कि किस तरह बद्री के साथ बाराबकी जाकर मैने अफीम खरीदी और किस तरह आज उसे कानपुर बेचने जा रहा था कि स्टेशन पर पुलिस ने मुझे पकड लिया और मुझे छोडकर बद्री को हवालात मे बन्द कर दिया। बडे भाई ने पूरी बात बडे गौर और गम्भीरता से सुनी। तब वे मुझे साथ लेकर उस चौकी पर गये जहाँ के कान्स्टेबुल ने हमे स्टेशन पर पकड़ा था। वहाँ बडे भाई ने दारोगा से पूछताछ की परन्तु उसने बताया कि वहाँ कोई केस दर्ज नही हुआ है। बद्री नाम का वहाँ कोई आदमी नही आया। वैसे बडे भाई दारोगा से झूठ बोले थे कि मै थैले मे जेवर

रखकर कानपुर जा रहा था और उनके एक कान्स्टेबुल ने वह थैला मुझसे छीन लिया था और साथ में बद्री को भी पकड लिया था। परन्तु बद्री का वहाँ नाम-निशान नही था। बडे भाई ने हवालात मे जाकर देखा। वहाँ दो-तीन लोग बन्द थे परन्तु बद्री उनमे नही था। वह कान्स्टेबुल भी वहाँ नही था। वैसे इतनी जानकारी मैने दिन मे कर ली थी कि कान्स्टेबुल इसी चौकी का था और वह बद्री को लेकर यहाँ आया भी था। परन्तु बद्री न सही उस कान्स्टेबुल को तो वहाँ होना चाहिए था। वह कहाँ चला गया? वैसे उस चौकी के सारे कान्स्टेबुल उस समय वहाँ नही थे। कुछ इधर-उधर ड्यूटी पर गये हुए थे। मुश्किल यह थी कि मैं उसका नाम भी नही जानता था। केवल शक्ल से उसे पहचान सकता था। आखिर हम लोग वहाँ से निकल आये। सामने सडक पर आकर बडे भाई पान की एक दूकान पर सिगरेट लेने लगे। तभी वह कान्स्टेबुल मुझे थोड़ी दूर पर एक हलवाई की दूकान पर कुछ खरीदते हुए नजर आ गया। मैंने बडे भाई को बताया। वह तुरन्त उसकी ओर बढ गये। मैं भी पीछे-पीछे चल दिया।

बड़े भाई ने लपककर उसे बाँह से पकड़ लिया। उसने चौककर हमारी तरफ देखा।

—यही था? बडे भाई ने मुझसे पूछा।

—जी। मैंने उत्तर दिया। किसी शक-सुबह की कोई गुजाइश ही नही थी।

—क्यो जी, इसका थैला कहाँ है? बडे भाई ने उससे पूछा।

—कैसा थैला? उसने उत्तर दिया। उसको देखकर ऐसा लग रहा था कि वह हमे देखकर कफी घबरा गया है।

—जो तुमने सुबह इनसे स्टेशन पर छीना था। उसमें डेढ हज़ार के जेवर थे। बडे भाई ने कहा।

—मैंने किसीसे कोई थैला नही छीना। इनको मैं पहचानता भी नही।

मै सन्नाटे मे आ गया। यह ये क्या कह रहा था। तभी सारा रहस्य मेरी आँखो के सामने खुल गया। इसका एक ही मतलब था कि बद्री ही ने मुझे इस प्रकार धोखा दिया था।

—बद्री को तुम पकडकर सुबह यहाँ चौकी पर नही लाये थे ? मैंने उससे कहा।

—कौन बद्री ? मै किसी बद्री को नही जानता।

—यही था न ? बडे भाई ने मुझसे दुबारा पूछा।

—जी। बिलकुल यही था। झूठ बोल रहा है।

—तुम्हारा नाम क्या है ? बडे भाई ने कडे स्वर मे उससे पूछा।

—रामसिंह। उसने कहा।

—तुमने इसको सुबह स्टेशन पर नही पकड़ा था ? उन्होने मेरे लिए कहा।

—मैंने बताया न कि मैं इसे पहली बार देख रहा हूँ और किसी बद्री को भी मै नही जानता।

बडे भाई को काफी गुस्सा आ रहा था। परन्तु वह चुप रह गये। —ठीक है, उन्होने कान्स्टेबुल से कहा। दो-एक दिन मे तुमको पता लग जाएगा। और वह मुझे लेकर अपने एक वकील मित्र के पास आ गये जो अपने क्षेत्र के कार्पोरेटर और काफी पहुँचवाले व्यक्ति थे।

वकील साहब को पूरी बात समझते ज़रा भी देर नही लगी। उन्होने कहा कि इन स्मगलरो की पुलिस से जान-पहचान, बल्कि साठगाठ होती है। बद्री ही ने उस कान्स्टेबुल को बुलवाया होगा और अब अफीम उसके कब्ज़े मे है और उसकी है। या तो वह उसे लेकर यहीं कही इसी शहर मे होगा या फिर उसे बेचने किसी और शहर चला गया होगा।

—तुम चाहो, उन्होने बडे भाई ने कहा—तो उस कान्स्टेबुल के खिलाफ कुछ ऐक्शन हो सकता है। परन्तु साथ मे इनको भी जेल हो जाएगी। उमर क्या है इनकी ?

—उमर की तो कोई बात नही। वैसे स्कूल के हिसाब से माइनर ही होगा।

—माइनर होगा तो जुबेनाइल जेल भेज दिया जाएगा। अफीम की तो बात ऐसी है कि अभी डी. वाई. एस पी के पास चलो। वे लोग तो ऐसे लोगो का पता लगाने की प्रतीक्षा मे ही रहते हैं। उनका प्रमोशन इन्ही बातो पर निर्भर करता है। मगर एक बात समझ लो कि न तो तुमको रुपये वापस होगे और न इसके बचने की गारण्टी हो सकती है। हाँ, वह पुलिसवाला ज़रूर मुअत्तल कर दिया जाएगा।

—और अगर मै बयान दूँ कि थैले मे अफीम की जगह डेढ हज़ार रुपये के जेवर थे जो मै अपने किसी रिश्तेदार के पास कानपुर भेज रहा था? बडे भाई ने कहा।

—साबित करना मुश्किल होगा। वकील साहब ने सोचकर कहा—और फिर ऐसा कहने पर कोई विश्वास न करेगा और इन्ट्रेस्ट भी न लेगा। अफीम की बात तो ऐसी है कि कोई भी बडा पुलिस अधिकारी तुरन्त छानबीन करेगा।

कोई एक घटे तक हम लोग वकील साहब के घर पर बैठे इधर-उधर की तमाम जुगत भिडाते रहे। परन्तु अत में जब बडे भाई को विश्वास हो गया कि रुपये वापस होने की बात तो दूर रही, मुझे जेल अलग से हो जाएगी तो वह मुझे लेकर वहाँ से सीधे घर लौट आये।

घर लौटकर उन्होने पिता को सारी बात बतायी। माँ और मझले भाई वही थे। अत में यही तय किया गया कि जो कुछ हुआ सो हुआ। यानी रुपये गये सो गये, अब कुछ नही हो सकता। माँ रोकर अपना सिर पीट रही थी कि क्यो उनकी मति बौरा गयी जो उन्होने मुझे रुपये दिये और मैं मन ही मन फैसला कर रहा था कि बद्री का खून मैने न किया तो मेरा नाम नही।

रात देर तक सब लोग जागते रहे। मैं खाना नही खा रहा था। परन्तु अत मे जब बडे भाई ने मुझे काफी डाटा-डपटा तो मैंने खाना खा

लिया। माँ ने भी किसी तरह ही भोजन किया और रात कोई बारह बजे हम लोग अपने-अपने बिस्तरो पर चले गये।

रात मै सो नही सका। यही सोचता रहा कि बद्री का खून मै किस प्रकार करूँगा। आखिर सुबह के पहले पहर मे जब मुझे नीद भी आयी तो स्वप्न मे मै यही सब कुछ देखता रहा।

जल्दी ही बडे भाई का तिलक होनेवाला था। उसकी तैयारी में सब लोग मेरी बात भूल गये। या यह कहना ज्यादा ठीक होगा कि उसके सामने मेरी यह हरकत गौण एव कम महत्वपूर्ण हो गयी। पिता कभी माँ के साथ और कभी अकेले बैठकर बुलाये जानेवाले मेहमानो की लिस्ट तैयार करते, कभी राशन-पानी का मीजान मिलाते, कभी बहू के लिए बननेवाले जेवरो का हिसाब लगाते। हर वक्त वह अपने मे खोये-से नजर आते। माँ दिन-भर घर मे मिलने आनेवाली औरतो से उलझी रहती। उनको बार-बार एक-एक बात दुहरा-दुहराकर बताती—लडकी का बडा भाई डाक्टर है। बाप मिलेटरी के दफ्तर मे सुपरिटेण्टेण्ट हैं। आगरा मे अपना मकान है। पूरी हवेली। भरा-पूरा परिवार है। तीन बहने हैं। बड़ी की शादी दिल्ली मे हुई है। मझली ये है। छोटी अभी पढ रही है। यह भी बी ए पास है सेकेण्ड डिवीजन मे। नही भाई, नौकरी मैं न कराऊँगी। मेरे खानदान मे बहू, बेटियो ने अभी तक तो नौकरी की नही। और फिर बच्चन जानें। जो उनकी मरजी हो।

—तीन हजार नकद और बारह थान लायेगे तिलक मे। थाल-तश्तरी, मेवा-मिठाई तो होगी ही।

—शादी मे रेडियो, पलग, सोफा, मशीन, पखा सब देगे।

—ये तो कहते हैं कि बारात मे हाथी घोडा सब कुछ ले जायेगे, मगर बच्चन मानते ही नही। आजकल फैशन भी तो नही है। सिरिफ मोटर चलती है।

—अभी आयेंगे रिश्तेदार। दानापुरवाली मौसी भी आयेंगी। पिछली बार जब मेरी बीमारी मे आयी थी तब तुमसे भेंट हुई होगी। अब तो लड़के-बच्चेवाली हो गयी है।

और इसी तरह की ढेर-सारी जरूरी, गैरजरूरी बातें। अक्सर घर मे औरतों का गाना-बजाना होता रहता। मसाले कूटे-पीसे जाते। दाले बीनी-पछोरी जाती। मकान की पुताई हो गयी थी और घर में बिजली लग गयी थी।

बड़े भाई घर मे जरा कम ही रहते। मगर जब वह होते और मुहल्ले की भाभियाँ घर मे होती तो उनसे कोई मजाक भी होता रहता। सभी उनसे मिठाई माँगती। बड़े भाई हँसकर टाल देते।

माँ दिन-भर मेकअप किये रहती। यानी अपने बचेखुचे जेवर और पुरानी साड़ियाँ पहने रहती जिन्हे वह बरसो से इस अवसर पर पहनने के लिए बक्सो मे दबाये रखे थी। परन्तु पिता इसके बिलकुल विपरीत हमेशा खोये-खोये चिन्तित दिखाई देते। उनकी इच्छाओ, जरूरतो और जमा धन का त्रिकोण किसी तरह बन नही पा रहा था। सबसे बड़े लड़के की शादी पर वह अपना हाथ भी खीचकर नही रखना चाहते थे ताकि कोई यह न कहे कि बाबू रघुवर दयाल कंजूसी कर गये। आखिर उन्होने कई दिन सोचने-समझने के बाद मकान गिरवी रखने का फैसला किया। इधर-उधर भाग-दौड़कर वह तीन हजार पर मकान गिरवी कर आये।

तिलक में लगभग सारे मुहल्ले को आमन्त्रित किया गया। पाँच तरह की मिठाई बनवायी। मकान को बिजली की झालरो से सजाया गया। सामने पार्क मे शामियाना लगा। कुर्सी-मेजें किराये पर मगायी गयी। सुबह से लाउडस्पीकर पर फिल्मी गाने बजते रहे। कोई पाच-सात सौ आदमियो ने भोजन किया। घर के मेहमान तो खैर कई दिन पहले से आ गये थे। गनीमत यह थी कि जाड़ा शुरू हो गया था। सब घर के कमरे-कोनो मे इधर-उधर सुकड़-सिमटकर रह लेते। नही तो

यदि गर्मी के दिन होते तो घर मे इतने लोगो के रहने की गुंजाइश भी नही थी।

इस सारे बीच मेरा अस्तित्व घर मे बिलकुल नगण्य-सा हो गया था। पहने तो पिता कभी-कभी मुझको बाजार सामान आदि लेने के लिए भेज भी दिया करते या और छोटी-मोटी ज़िम्मेदारी के काम दे दिया करते थे। परन्तु अफीमवाली घटना के बाद से उन्होने यह सब करना बन्द कर दिया था। भाई दोनो ही मुझसे कम ही बात किया करते थे। एक माँ थी जो कभी-कभार मुझे अपने पास बिठाकर समझाया-बुझाया करती थी और इधर-उधर की पुरानी बाते बताया करती थी, सो बडे भाई के विवाह के सिलसिले मे वह इतना व्यस्त थी कि अब कभी उनको इसकी फुरसत ही नही थी। जहाँ तक रुपये पैसे की बात थी उसके लिए माँ को सख्त ताकीद कर दी गयी थी कि बिना पिता से पूछे वह मुझे एक पैसा भी न दे चाहे जैसी भी ज़रूरत हो। इसके अलावा बक्से मे तो ताला बन्द ही रहता, जिस कोठरी मे बक्स रखा जाता था उस कोठरी में भी ताला पडने लगा। ऐसी स्थिति मे मुझे लगा जैसे अपने ही घर में मैं बेगाना-सा हो गया हूँ। किसी देश में द्वितीय स्तर के नागरिक के लगभग जैसी हालत मेरी थी। फिर भी मैं कम उत्साहित नही था और अपने आप दौड-दौडकर सारे काम करता। जैसे, तिलकवाले दिन दरवाज़े पर अशोक की पत्तियो का गेट बनवाना, रिकार्डिंग का ध्यान रखना कि कौन-सा गाना बजेगा, कौन-सा नही। कुल्हड-पत्तलो की सफाई, बिजली के फ्यूज बल्ब बदलना या कही और नये प्वाइन्ट लगाना भी मेरे सुपुर्द था। कभी-कभी मौका निकालकर मैं उस स्थान पर भी हो लेता जहाँ हलवाई बैठा था और बावजूद इसके कि उसका इचार्ज कोई दूसरा आदमी था, मैं मिठाई और खाने के अन्य सामानो को चखकर देख लेता कि सब कुछ ठीक बन रहा है या नही। मेहमानो की खातिरदारी मे भी मैं चौकस था कि सबको ठीक समय से नाश्ता-पानी मिल जाये, किसीको किसी तरह की शिकायत न रहे।

तिलक मे जो सामान आया था, तिलक चढ जाने के बाद उसको बाहर के कमरे मे सजाने का काम भी मैने ही किया। रुपये गिनकर पिता ने अपने पास रख लिये और बाकी सामान दूसरे लोगो के देखने के लिए बाहर के कमरे मे थोडी देर के लिए रख दिया गया। उसमे बडा-सा एक थाल मखाने के लाओ, अन्य मेवो तथा चान्दी से मढे हुए नारियलो से भरा हुआ था। अलग-अलग ट्रे मे सजे हुए कपडो के थान, मिठाई और फल थे।

तिलकवाले दिन काफी रात तक मै जागता रहा। मैं ही क्यो, घर के सभी लोग जागते रहे। परन्तु दूसरे दिन मैं देर तक सोता रहा जबकि और लोग जाग गये। मै सोकर उठा तो तिलक के सामान की एक बार फिर से नुमाइश हो रही थी और यह तय किया जा रहा था कि किसके लिए कौन-से कपडे बनेगे। कपडो मे मलमल लक्लाट और शर्टिग के थानो के अलावा गर्म सूट के भी दो पीस थे। यह सम्भवतः भाई के लिए आये थे। परन्तु बडे भाई ने अपने लिए सूट बनवा लिये थे। अत यह तय पाया गया कि उनमे से एक का सूट मझले भाई अपने लिए बनवा ले और दूसरे का पिता अपने लिए लम्बा बन्द गले का कोट सिलवा ले। कमीजे और पाजामे सबके लिए बनने थे। मेरे लिए भी कमीज़-पाजामे के अलावा और गुंजाइश नही थी। मेरे मन मे आया भी कि मै अपने सूट के लिए कहूँ। उन कपडो से नही बन सकता तो मेरे लिए अलग से बनवाया जाए। आखिर मेरे जीजा जी को बाहर से कपडा खरीदकर दिया हो गया था। परन्तु मैने कुछ कहा नहीं। किसी और ने भी यानी मेरे किसी रिश्तेदार ने भी नही कहा। मुझे अन्दर ही अन्दर मन मे रुलाई-सी आयी। परन्तु मै चुप रह गया और उस स्थान से हट गया। हाँ यह ज़रूर मैने मन ही मन निश्चय किया कि यदि शादी से पहले मेरे लिए सूट न बना तो मैं शादी मे नही जाऊँगा। कहूँगा किसीसे कुछ नही।

आखिर यही हुआ । कोई दो हफ्ते बाद शादी की तारीख थी । इस बीच सबके कपडे बन गये । यानी मझले भाई का सूट और पिता का लम्बा कोट बन गया । परन्तु मेरे लिए कमीज़-पाजामा के अलावा कुछ नही बना । हाँ, जब सबके लिए नये जूते आने लगे तो पिता ने जरूर मुझसे कहा कि मै भी उनके साथ जाकर नये जूते ले आऊँ । परन्तु मैंने इनकार कर दिया । —इन्ही जूतो से काम चला जाएगा । मैने कहा । पिता ने दो-एक बार और कहा । परन्तु जब मैंने फिर भी इनकार किया तो उन्होने भी जिद नही किया ।

ऐसा नही कि मेरे पास पहले से कोई सूट था । बल्कि आज तक कभी मैने सूट पहना ही नही था । गर्म पतलून भी मेरे पास नही थी । हाँ, एक गर्म कोट जरूर था कोई दो साल पुराना । पिता ने यह ज़रूर कहा कि मै अपना कोट धुलवा लूँ । परन्तु मैने उनकी यह बात भी नहीं मानी । आखिर जब बारात जाने का वक्त आ गया, बस आकर दरवाज़े पर खडी हो गयी और मैने न अपने कपडे कही रखे, न पैर मे जूते ही पहने और सब बाराती लोग बस मे बैठने लगे तो सभी लोग चौके । बारी-बारी से पिता, बडे भाई और माँ ने मुझे समझाया, परन्तु मैंने बारात मे जाने से इनकार कर दिया ।

—घर पर भी कोई आदमी रहना चाहिए । मैं वहाँ जाकर क्या करूँगा । मैंने कहा ।

—घर पर देखभाल का इन्तज़ाम मैने कर दिया है । पिता ने कहा । —तुम चलो, बस मे बैठो ।

सब लोग मुझे समझाकर हार गये, परन्तु मैं अपनी बात पर अडा रहा । आखिर जब बारात को देर होने लगी तो पिता ने मजबूर होकर बस चलने का आदेश दे दिया ।

बारात चली जाने के बाद भी माँ मुझे देर तक समझाती रहीं । आखिर जो बात मैं नहीं चाहता था मुझे कहनी पडी ।

—क्या पहनकर जाऊँ मैं वहाँ? सबकी बदनामी करवाऊँ जाकर? लोग क्या समझेंगे मुझे, दूल्हे का भाई है या नाई-कहार?

माँ मुझे समझाने लगी—तुमने पहले क्यो नही बताया? कुछ न कुछ किया जाता। तुमको पता है कि कितना खर्च हो रहा है? मकान गिरवी रखकर जो रुपया आया था सब खतम हो गया। तुम्हारे पिता ने और एक हजार कर्ज लिया है किसीसे, तब बारात गयी है। तुम क्या समझते हो कि तुमसे किसीकी दुश्मनी है? कोई बच्चे तो हो नही तुम। अच्छे-खासे समझदार हो।

मुझे मन मे रोना-सा आया, परन्तु वास्तव मे अब इस समय मैं कतई इस हालत मे नही था कि जा सकूं। कोट ड्राई क्लीन होने की बात दूर रही, प्रेस तक नही था और कपड़े भी जैसे-तैसे थे। और फिर बारात भी जा चुकी थी।

आखिर माँ ने मुझे अपने पास से सौ रुपये निकाल कर दिये और कहा कि जाओ बाज़ार से अपने लिए जो चाहो सिले-सिलाये कपड़े, जूते खरीद लो और बस, ट्रेन जो भी मिले उससे चले जाओ। रात तक पहुंच जाओगे तो कोई कुछ नही जानेगा, नही तो बडी बदनामी होगी कि छोटा भाई क्यो नही आया।

मैं तुरन्त बाज़ार गया। वहाँ से एक सूती ऊनी मिक्स्ड जैकेट खरीदी तथा एक रेडीमेड पतलून। जूते-मोजे लिये और एक अटैची मे सारा सामान रखकर तुरन्त सरकारी बस से आगरा के लिए रवाना हो गया। गनीमत यह थी कि बस-स्टेशन जाते ही बस मिल गयी। अगर पन्द्रह-बीस मिनट और लेट होता तो दूसरी बस रात मे थी।

आगरा पहुंचते-पहुँचते मैने बस मे ही कपडे बदले और स्टेशन से सीधा लडकीवालो के घर के लिए रिक्शा करके चल दिया। कोई साढे दस बज रहे थे। वहाँ पहुँचा तो दरवाज़े पर बारात पहुँच चुकी थी। जयमाल हो रहा था। बाराती लोग कुर्सियो पर बैठे नाश्ते-पानी का

इन्तजार कर रहे थे। फूलो से सजी मोटर खडी थी। बैंडवाले कोई चालू फिल्मी धुन बजा रहे थे।

पिता ने मुझे देखा तो बुलाकर अपने पास बिठा लिया। कहा कुछ नहीं।

बारात के लौटते ही पिता बीमार पड़ गये। असलियत मे उनकी तबीयत आगरा मे ही खराब हो गयी थी। परन्तु उन्होने किसीसे कुछ कहा नही। लौटकर भी नही कहा। दहेज का सारा सामान, रेडियो, पंखा, मशीन, सोफा-मसहरी आदि उसी बस मे ठूंस-ठामकर ले आया गया था। बहू भी उसीमे बैठकर आयी थी। बारात वापस आने पर दरवाजे पर बहू की अगवानी के लिए जो भी रस्मे होनी थी, हुई। उसके बाद पिता बस से सामान उतरवाकर रखवाने लगे। कोई डेढ-दो घटा उनको उसमे लगा। इसके बाद वे घर मे आकर चारपायी पर बैठ गये और ऐसा बैठे कि फिर दुबारा उठ ही न सके। माँ को जब सारे काम से फुर्सत मिली और उन्होने आकर पिता को देखा तो उन्हें लगा कि जैसे वह महीनो से बीमार हैं। वैसे प्रत्यक्ष उन्हे कुछ नही हुआ था। परन्तु अन्दर से उन्हें बहुत कमजोरी महसूस हो रही थी। हाथ-पाँव के पजे ठडे हो गये थे। माँ ने आकर डाक्टर को बुलाने के लिए कहा। और जिसने देखा उसने भी यही राय दी। परन्तु उन्होने मना कर दिया। सब लोग यही समझे कि बारात की थकान है, एक-आध दिन मे उतर जायेगी। माँ ने उन्हे चाय आदि लाकर दी और फिर अपने काम-काज मे जुट गयी। पिता के लिए वहीं बिस्तर लगा दिया गया और वह वही लेट गये।

रात को घर मे औरतो का गाना-बजाना चल रहा था। तभी कोई दो-एक बजे पिता ने माँ को बुलाया और उनसे कहा कि वे गाना-बजाना बन्द करवा दे। उनका दिल घबरा रहा है। माँ घबरा गयी। तुरन्त गाना-बजाना बन्द करवा दिया गया। बडे भाई बुलवाये गये।

उन्होने पिता को देखा, परन्तु सिवाए उनके चेहरे पर थकान के और कोई खास बात नही थी। कही किसीके घर से थर्मोमीटर माँगकर आया। परन्तु बुखार उन्हे नही था। और भी कोई बात उन्हे नही थी। फिर भी बड़े भाई तुरन्त डाक्टर को बुलाने जाने के लिए तैयार होने लगे। परन्तु पिता ने फिर मना कर दिया। सुबह देखा जायेगा, उन्होने कहा। —बस, इस शोर की वजह से मुझे नीद नही आ रही है। थोडी देर सो लूंगा तो तबियत ठीक हो जायेगी। तुम लोग जाओ आराम करो—उन्होने कहा। फिर उन्होने बहू के बारे मे पूछा कि वह कहाँ है? माँ ने बताया कि वह औरतो के बीच बैठी है तो उन्होने कहा कि अब उसे भी सोने दो। बेचारी इतना लम्बा सफर करके आयी है, थकी होगी। हम लोग बत्ती बुझाकर चले गये।

पता नही रात वह सोये या नही, परन्तु सुबह उनकी तबीयत वैसे ही थी। आखिर बडे भाई डाक्टर बुला लाये। डाक्टर ने उन्हें एक्जामिन किया। उनका ब्लड-प्रेशर बहुत कम था। डाक्टर ने बडे भाई को अलग ले जाकर बताया कि उन्हें हल्का हार्ट अटैक हुआ है। उन्हे अस्पताल भर्ती करा दिया जाय। और यदि अस्पताल न भर्ती कराया जाय तो यहाँ बिस्तर से उन्हे हिलने न दिया जाय। इसके बाद उसने आवश्यक दवाएँ लिखी और अपनी फीस लेकर चला गया।

बडे भाई ने पिता को यह तो नही बताया कि उन्हे हार्ट अटैक हुआ है, परन्तु यह ज़रूर कहा कि डाक्टर की सलाह हे कि वह अस्पताल मे भर्ती हो जाएँ जिसके लिए उन्होने साफ मना कर दिया।

इसके बाद घर मे गाना-बजाना सब मना कर दिया गया। बहू को लेकर देवी देवताओ की पूजा सम्बन्धी कुछ रस्में थी जिनमे शायद गाना भी ज़रूरी थी। परन्तु बडे भाई ने सख्त मना कर दिया कि घर मे ज़रा भी शोरगुल न होगा। अतः गाना गली पार करने के बाद सडक पर हुआ।

मेहमानो को भी बडे भाई ने मना कर दिया कि वह ज्यादा देर पिता के पास न बैठे, क्योकि उन्हे पूर्ण आराम चाहिए था। एक सप्ताह के अन्दर ही वे एक-एक करके चले गये। उनके जाने के बाद घर मे फिर सन्नाटा छा गया। हम सब लोग नीचे के हिस्से मे रहते और बडे भाई अपनी पत्नी के साथ ऊपर। वैसे प्रायः दिन मे बडे भाई पिता के पास ही बने रहते। माँ भी वही रहती, क्योकि खाना वगैरह भाभी बनाने लगी थी। दूसरे-तीसरे दिन डाक्टर भी, आकर पिता को देख जाता। उसका कहना था कि इन्हें पाखाना-पेशाब सब चारपाई पर ही कराया जाए। किसी प्रकार का शारीरिक श्रम न हो। यहाँ तक कि उन्हें करवट आदि अपने आप लेने की आज्ञा भी नही थी। यह सब इसलिए था कि डाक्टर का ख्याल था कि किसी भी समय दूसरा अटैक हो सकता है जो पहले से कही ज्यादा खतरनाक होगा।

पिता की बीमारी ने घर के माहौल मे एक अजीब तरह की मनहूसियत पैदा कर दी थी। माँ कुछ-कुछ यह भी कहने लगी थी कि बहू के चरण अच्छे नही है। वैसे भाभी देखने-सुनने मे काफी सुन्दर थी। हाँ, एक शिकायत उनसे मुझे भी थी जो आज भी है, वह यह कि वह बडे भाई को छोड़कर किसी अन्य को अपने घर का व्यक्ति ही नही समझती थी। ऐसी बात नही कि उन्होने कभी किसीसे दुर्व्यवहार किया हो, परन्तु और लोगो से वह बोलती ही बहुत कम थी। बस, जरूरी बात करती या फिर किसीने कुछ पूछा तो उसका जवाब दे दिया। कई बार उनके पास जाकर मै घण्टा-आधा घण्टा तक बैठा रहा कि वह कुछ बात करे। हँसी-मज़ाक करे। नही तो सिर्फ यही पूछे कि मैं क्या करता हूँ, किस क्लास मे पढता हूँ, या कुछ भी। परन्तु बावजूद इसके कि वे मुझको आदर से बैठाती, बातचीत बहुत कम करती।

माँ को भी यह शिकायत थी। मेरे सामने पिता ने एक बार माँ से पूछा कि बहू कैसी है तो उन्होने भाभी की बहुत तारीफ की, कहा—देखने-सुनने मे अच्छी है, घर का सारा काम करती है, मेरी भी सेवा

करती है, परन्तु बोलना नही जानती। किसीको कुछ कहती भी नही। यह बात सही थी। मेरी जानकारी मे कभी भी भाभी ने माँ को 'माँ जी' कहकर नही बुलाया। न कभी मुझे 'लाला जी' कहा। वैसे वह माँ का आदर करती थी और उनसे 'आप' कहकर बात कर लेती थी। परन्तु मेरा ख्याल है कि वह माँ को यदि 'माँ जी' या 'अम्मा जी' कहकर बुलाती और फिर चाहे 'तुम' ही कहती तो उन्हे ज्यादा खुशी होती।

खैर बारात लौटने के दस-बारह दिनो बाद भाभी के पिता जी आये और वह वापस आगरा चली गयी। उनके जाने के बाद बडे भाई देर तक पिता के पास ही बैठे रहते। मँझले भाई भी अक्सर आते और मै भी उनके आसपास ही बना रहता।

अपनी बीमारी के दौरान, जब भी मैं उनके पास अकेला होता, पिता मुझे कायदे से बिठलाकर समझाते। उनका सिर्फ एक बात पर जोर था कि मै मेहनत करके हाई स्कूल पास कर लूं, क्योकि दुनिया मे बिना हाई स्कूल पास किये कुछ नही हो सकता। वैसे उनका यह सोचना कितना गलत था वह, यदि आज जीवित होते तभी समझ सकते थे। क्योकि आज सभी जानते है कि हाई स्कूल पास करना तो दूर की बात रही, एम ए, एम.एससी., इन्जीनियरिग पास करके भी लोग सडको पर धूल फॉकते रहते है। बहरहाल पिता उन दिनो मुझे बार-बार यही समझाते कि मै किसी तरह हाई स्कूल पास कर लूँ। कभी-कभी वह मुझे दूसरे कोण से भी समझाते कि यदि मै आत्मनिर्भर न हो सका तो मुझे अपने भाइयो का आश्रय लेना पडेगा और एक भाई दूसरे भाई की ताजिन्दगी परवरिश करे यह तारीख मे कभी नही हुआ। भाइयो मे यदि कुछ होता है तो बस झगडा। मेरे पास कुछ ज़मीन-जायदाद भी नही है। वह आगे कहते—जिसके सहारे तुम ज़िन्दगी काट सको, केवल यही मकान है जो भी गिरवी हो चुका है। तुम बड़े हो चुके हो और मै बूढा। मैं तुमको सिर्फ समझा सकता हूँ। बस। मेरी नसीहत पर तुम

अमल करो या न करो, इसके लिए मैं तुम्हें मजबूर नही कर सकता। अगर अमल करो तो ज़िन्दगी मे खुश रहोगे। न अमल करोगे तो ज़िन्दगी-भर दूसरो की गुलामी करते बीतेगी।

मैं उनकी बाते गम्भीरता-पूर्वक सुनता। हाई स्कूल का फार्म भी मैंने भर रखा था। उन्हे आश्वासन भी देता कि उनकी नसीहत पर अमल करूँगा। परन्तु पढने मे तबियत कतई नही लगती। उस समय मेरी ज़िन्दगी का बस एक ध्येय था—बद्री की हत्या करना है। और वह मुझे मिल नही रहा था। इसके लिए एक चाकू भी मै अपने पास रखने लगा था, हालाकि उस चाकू से हत्या तो दूर की बात थी, सब्जी भी ठीक से नही कट सकती थी। परन्तु मै अपने इरादे पर दृढ था। दिक्कत यही थी कि बद्री मेरी पकड़ मे नही आ रहा था।

दो महीने तक पिताजी इसी तरह चारपाई पर पडे रहे। चौथे-पाँचवे दिन डाक्टर आकर उन्हे देख जाता। दवा लगातार चल रही थी। उनके स्वास्थ्य में कुछ सुधार भी हो चला था। ब्लडप्रेशर पहले से काफी ठीक हो गया था। तभी उन्हे दूसरा दिल का दौरा पडा।

भाभी उसी दिन वापस लौटी थी। बडे भाई उनको लेने गये थे। बीच में होली पडी थी। होली पर बडे भाई के ससुरालवालो ने उनको बुलाया था। तभी तय हुआ था कि वह जायेगे और भाभी को साथ लेकर आयेगे। वैसे पिता ने पहले भी दो-एक बार लिखा था उन लोगो को कि उनकी तबियत ठीक नही है। घर मे काफी परेशानी है। अतः वे लोग बहू को भेज दे। परन्तु वे लोग इस बिना पर टालते रहे थे कि पहली होली भाभी को घर पर ही होनी चाहिए। पिता मान गये थे।

हाँ तो, भाभी उस दिन दुबारा इस घर मे आयी थी। कोई दस बजे वह आयी होगी। साथ मे कुछ पूरी-मिठाई वगैरह भी थी। माँ महरी के हाथ वह सारा सामान मुहल्ले के अन्य घरो मे भिजवा रही थी। बड़े भाई घर मे नही थे। मझले भाई भी नही थे। केवल मै माँ के

पास बैठा दूसरे लोगो के यहाँ पूरी-मिठाई भिजवाने का काम सुपरवाइज कर रहा था। तभी पिता ने माँ का नाम लेकर पुकारा। जिन्दगी मे पहली बार मैने उन्हें माँ का नाम लेते सुना था। माँ चौक पडी। उन्हे विश्वास नही हुआ कि पिता ने पुकारा है। परन्तु मै समझ गया था। मै तुरन्त दौडकर उनके कमरे मे गया। माँ भी मेरे पीछे आ गयी। तब तक पिता बेहोश हो चुके थे। उनकी मुट्ठियाँ भिच गयी थी और उनके मुँह से झाग निकल रहा था। मैने उन्हे हिलाया-डुलाया। माँ ने भी उन्हे बुलाया। परन्तु वे बोले नही। केवल एक बार आँख खोलकर माँ की ओर देखा और तब हाथ बढाकर मेरी कलाई पकड ली। मुझे लगा जैसे उनकी उँगलियाँ लोहे की हो। परन्तु दूसरे ही क्षण उनकी पकड ढीली पड गयी और उन्होने मेरे देखते-देखते आँखे बन्द कर ली। मै कतई नही समझा कि उन्हे क्या हुआ है। परन्तु माँ समझ गयी। वे दहाड मारकर रो पडी। घर मे उस समय केवल भाभी ही थी और महरी थी। वे लोग भी वही आ गयी ओर अचानक घर मे कुहराम मच गया। मैने पिता का हाथ पकडकर उनकी नब्ज देखी। हालाँकि आज तक मैने किसीकी नब्ज नही देखी थी। परन्तु मुझे तुरन्त पता चल गया कि उनकी नब्ज बिलकुल गायब है। जाने क्यो—आज तक मेरी समझ मे यह नही आया—मेरी आँख मे एक भी आँसू नही आया। बल्कि मै उल्टा माँ को रोने से रोकने लगा। तब तक अडोस-पडोस के कुछ लोग माँ का रोना सुनकर आ गये थे। उन्होने पिता को बिस्तर से उठाकर जमीन पर लिटा दिया।

थोडी देर मे बडे और मझले भाई भी आ गये। मुहल्ले के कुछ लोग जमा हुए। हम लोगो के और रिश्तेनदार आये। सब लोगों ने मिलकर सारा काम निपटाया। शाम को कोई छ बजे जाकर घाट पर अत्येष्टि हुई। बडे भाई सिर मुडाकर रामतीर्थ बने हुए घर लौटे। किसी दूसरे घर से पूरी वगैरह बनकर आयी जिसे रात मे सब लोगों ने, जिससे जो भी खाया गया, खाया।

कोई एक-डेढ महीने बाद मेरी हाईस्कूल की परीक्षा होनेवाली थी। मैंने फार्म ज़रूर भर दिया था, परन्तु आज तक किताबो की शक्ल नही देखी थी। लेकिन उस रात मैने कसम खायी कि मुझे जो भी करना पडे मै इस बार हाईस्कूल उत्तीर्ण होकर ही रहूँगा। रात-भर मुझे पिता की सारी बाते याद आती रही जो वे मुझको अपने पास अकेले बिठाकर समझाया करते थे। मुझे लगा कि जब तक मै हाईस्कूल पास न कर लूंगा उनकी आत्मा को शान्ति न मिलेगी। रात मैं सोया भी तो मुझे स्वप्न मे पिता का चेहरा दिखायी देता रहा मानो वह मुझसे कह रहे हों— हाईस्कूल पास कर लो, नही तो दुनिया मे कुछ न कर पाओगे।

दूसरे दिन से बडे भाई तथा घर के अन्य लोग अन्त्येष्टि के बाद के सारे कर्मकाण्ड मे व्यस्त हो गये। परन्तु मै मुहल्ले के अन्य लडको के पास जाकर ज़रूरी पुस्तकें बटोरने लगा। पुस्तके जमा करके मैने पढाई शुरू कर दी। मेरे मुहल्ले मे ही पास के स्कूल के एक मास्टर साहब रहा करते थे। वे मुझे मुफ्त मे पढाने को राजी हो गये। स्कूल उन दिनो प्रीप्रेशन लीव के लिए बन्द हो गये थे। अत वह दिन भर फ्री रहते थे। मैं दो-तीन घण्टो के लिए उनके पास जाता। वह जो भी मुझे बताते मै बहुत कायदे से नोट करता। गेस पेपर और कुजियाँ भी मै ले आया था। रात मे देर तक बैठकर उन्हे रटता। यहाँ तक कि घर मे सभी को आश्चर्य होने लगा कि यह मुझे हो क्या गया है। माँ कुछ चिंतित भी हुई। रात बारह-एक बजे तक मै बैठा पढता रहता तो वह दो-एक बार उठकर मेरे लिए चाय बना देती। मुझको समझाती भी कि न इस बार सही अगले बार सही, कौन उमर निकली जा रही है। इस तरह रात-रात भर जागोगे तो स्वास्थ्य बिगड जायेगा। परन्तु मैने उनकी एक बात न सुनी। रात-दिन एक करके मैने परीक्षा की तैयारी की। साथ-साथ मैंने नकल का पूरा प्रबन्ध भी किया। इम्पार्टिन्ट प्रश्नो के उत्तरो की पुर्जियाँ बनायी। मुहल्ले के दो-एक लडको से जो इण्टर, बी ए मे पढते थे—वास्तव मे वे एक समय मेरे सहपाठी थे—से सम्पर्क किया कि वह मुझे

नकल करवा दे। परीक्षा हाल से प्रश्न मैं भिजवा दूंगा। वे उन्हे हल करके मुझे भेज दे। यह भी तय किया कि अपने साथ परीक्षा हाल मे चाकू भी ले जाऊँगा। यदि किसीने मुझे पकडा तो उसकी खैर नही। भाभी ने भी मेरी बहुत सहायता की। बडे भाई तो दिन-भर अकेले बाहर के कमरे मे पडे रहते। मै भाभी के पास बैठकर पढता रहता। भाभी बी ए. पास थी। वह मुझे बडे कायदे से समझाकर पढाती। दिन मे दो तीन घटे मास्टर साहब के यहाँ बीतते। उसके बाद फिर सारा दिन मै घर पर ही रहता। शायद ही मै कभी उन दिनो मे बाहर निकलता रहा हूँ। हाँ शाम को नियमित रूप से मै बाबा सिद्धनाथ के मदिर ज़रूर जाता। वहाँ जाकर कोई आध घटे तक शकर जी से मन ही मन प्रार्थना करता कि वे मुझे जैसे भी हो हाई स्कूल पास करा दे। एक बार मैं उस घाट पर भी गया जहाँ पिता की अन्त्येष्टि हुई थी। वहाँ भी एक छोटा-सा मदिर था। उस मदिर मे भी जाकर मैने यही प्रार्थना की। उन दिनो हर समय मेरे दिमाग मे बस यही धुन सवार थी कि मुझे हाई स्कूल पास करना है। जो भी हो।

परीक्षा हुई। माँ रोज सुबह मुझे नाश्ता बनाकर देती। बडे भाई ने अपनी साइकिल और घडी भी उतने दिनो के लिए मुझे दे दी थी। काफी प्रश्न तो मेरे तैयार किये हुए आये। बाकी मैंने नकल किये। हिसाब के पर्चे मे मुझे बाहर से भी मदद मिली। सौभाग्य से इस सारी हरकत मे मै पकड़ा भी नही गया। वैसे मैं कलम पेसिल के साथ चाकू भी अपने साथ ले जाता था। परन्तु उसकी नौबत नही आयी। हाँ, एक दिन शायद अग्रेजी के पर्चे मे एक इन्वीजिलेटर ने मुझे नकल करते देख लिया। परन्तु उसने केवल पर्चा मेरे हाथ से लेकर फेक दिया। और कुछ नही कहा। वर्ना शायद मै चाकू निकाल ही लेता।

परीक्षा समाप्त होने के बाद भी मै नियमित रूप से मन्दिर जाता रहा। जून के तीसरे सप्ताह मे रिजल्ट निकला। मैं द्वितीय श्रेणी में पास हो गया। बडे भाई खबर लेकर आये। खबर सुनते ही माँ ने

मुझे अपने सीने से चिपटा लिया और रोने लगी। मेरी आँख मे भी आँसू आ गये। इसके बाद माँ ने तुरन्त मिठाई मँगवायी। मन्दिर मे प्रसाद चढवाया और सारे मुहल्ले मे बाँटा।

उस दिन शाम मदिर जाकर मैने भगवान के प्रति बहुत कृतज्ञता व्यक्त की। उसके बाद वहाँ से सीधे उस घाट गया जहाँ पिता की अन्त्येष्टि-क्रिया हुई थी। वहाँ कोई दो-तीन घण्टे तक बैठकर मे रोता रहा। मेरा मन यही कहता कि काश आज पिता जीवित होते तो कितने प्रसन्न होते। देर तक घाट पर लगे एक पीपल के पेड के नीचे उदास बैठा मै पिता के बारे मे सोचता रहा। इस बीच कितनी ही चिताएँ वहाँ जलकर राख हो गयी। मै सोचता रहा कि ये मरनेवाले भी न जाने कितनी अधूरी साधे लिये इस ससार से चले गये होगे। किसीको सन्तान का दुख रहा होगा तो किसीको कुछ और। एक जवान व्यक्ति की भी लाश आयी जिसके साथ उसकी पत्नी भी थी। वैसे हिन्दुओ मे स्त्रियाँ घाट तक नही जाती। परन्तु जाने कैसे यह एक अपवाद था। वह बार-बार जलती चिता की ओर लपक रही थी। बडी मुश्किल से लोग उसे सभाले हुए थे। सम्भवत किसी दुर्घटना मे उसके पति की मृत्यु हुई थी।

कोई ग्यारह बजे मै घर लौटकर आया। उस दिन माँ ने मेरे लिए काफी अच्छे पकवान बनाये थे। परन्तु जाने क्यो मुझसे ठीक से खाया नही गया।

बडे भाई के विवाह के बाद से घर का खर्च खासा बढ गया था। काफी तगी होने लगी थी। पिता बारात से लौटते ही बीमार पड गये थे। अत उनका काम पर जाना रुक गया था और जो कुछ डेढ-दो सौ रुपये वह कमाकर लाते थे, बन्द हो गया था। उनकी मृत्यु के बाद हालत कुछ और खराब हो गयी। खासा खर्च उनके इलाज, अन्त्येष्टि और फिर उसके बाद के कर्मकाण्ड में हो गया था। मुझे ठीक तो पता नही परन्तु मेरा ख्याल है भाई कही से कुछ कर्ज भी लाये थे।

मझले भाई की ट्रेनिंग समाप्त हो गयी थी। उन्होने बिजली के काम से सबधित कोई डिप्लोमा किया था। परन्तु उन्हे कही नौकरी नही मिल रही थी। कई जगह उन्होने दरखास्ते भेजी थी। दो-एक जगह इन्टरव्यु भी हुआ था। परन्तु कही कुछ बात बनती नजर नही आ रही थी।

बडे भाई प्राय चिन्तित नजर आया करते। दो-एक ट्यूशनें भी वह करने लगे थे। परन्तु फिर भी घर का खर्च ठीक से नही चल पाता था। उन्होने कई जगह मेरे लिए भी कोशिश की थी। परन्तु कही कुछ हुआ नही। वह मुझे अपने मित्रो के नाम पत्र लिख-लिखकर देते और मै दौड-भाग करता। परन्तु सब बेकार गया। हॉ, एक दफ्तर मे चपरासी की जगह जरूर मिल रही थी, परन्तु मैने उनसे साफ कह दिया कि चपरासी की नौकरी मै नही करूँगा। आखिर कुछ दिनो बाद मुझे फैजाबाद के पास एक गॉव के ब्लाक मे नौकरी मिली विलेज लेविल वर्कर की। बडे भाई के किसी मित्र के मित्र वहॉ बी डी ओ थे। उन्हीकी कृपा से यह नौकरी मुझे मिली थी। वैसे मुझे लखनऊ से बाहर जाना बिलकुल अच्छा नही लग रहा था। परन्तु और कोई चारा नही था। मॉ ने मुझे समझाया। यह भी कहा कि कुछ दिनो के बाद वह स्वय आकर मेरे साथ रहेगी। गाँव का सिलसिला एक तरह से टूट ही गया था। यह अच्छा था कि मुझे गॉव मे नौकरी मिल रही थी। माँ ने कहा कि उनका बुढापा आराम से कट जायेगा। अयोध्या वहाँ से पॉच-सात मील दूर थी। भगवान राम की जन्मभूमि मे प्राण निकले इससे अच्छा और क्या हो सकता है। शहर मे तो आदमी को दीवारो मे बन्द घुटते रहने के अलावा कोई विकल्प नही है। बडे भाई ने भी समझाया कि कोई ज़रूरी तो नही है कि मै ज़िन्दगी वही काट दूँ। कोई दूसरी अच्छी नौकरी मिलने पर उसे छोड भी सकता हूँ। या फिर ट्रान्सफर भी हो सकता है। यही कही लखनऊ के पास किसी देहात मे। उन्होने तो यहाँ तक कहा कि रुपये बचाकर तुम वहाँ थोडी-बहुत खेती

लायक ज़मीन भी खरीद सकते हो। आजकल खेती से बढकर दूसरा कोई काम नही। बडे-बडे मिनिस्टर, ऐक्टर आदि गाँवो मे जाकर फार्म खोल रहे हैं और फिर अगर तुम्हे अच्छा न लगे तो लौट आना। नौकरी करने जा रहे हो, कोई बिक तो नही गये हो।

फिर भी मैं जाते समय काफी उदास था। माँ ने मेरे लिए दस-पन्द्रह दिनो के लिए नाश्ते का प्रबन्ध कर दिया था। लड्डू, शकरपारे और नमकीन आदि बनाकर डालडे के छोटे टिनो मे बन्द करके उन्होने मुझे दिया। बडे भाई ने अपना लिहाफ गद्दा दे दिया। एक स्टोव भी मुझे खरीद दिया। इसके अलावा रोजमर्रा इस्तेमाल आनेवाले बर्तन भी मैंने घर से ले लिये। लोटा, गिलास, थाली, बटलोई, बाल्टी आदि। बडे भाई मुझे स्टेशन तक छोडने आये। और गाडी स्टार्ट होने के बाद प्लेटफार्म पर खडे देर तक हवा मे हाथ हिलाते रहे। जाने क्यो गाडी चलते ही मेरी आँखो मे आँसू आ गये और मै अन्दर से काफी विचलित-सा हो उठा।

बडे भाई ने मुझे अपने मित्र से बी डी ओ साहब के नाम पत्र लिखवा दिया था, उसे लेकर मै उनके पास पहुँचा। उन्होने मुझे चाय पिलायी और मेरे घर-परिवार के बारे में इधर-उधर की बाते पूछी और अपने बगले की एक कोठरी मे मेरे रहने का प्रबन्ध भी कर दिया। —दो-तीन दिन तक ऐसे ही घूमो-फिरो, उन्होने मुझसे कहा। गाँववालो से परिचय करो। उसके बाद तुम्हे काम समझाऊँगा। उनकी यह बात मुझे बहुत अच्छी लगी। अत दो-तीन दिन तक मैं गाँव मे इधर-उधर आवारो की तरह घूमता रहा। गाँव के मन्दिर, खेत, तालाब, नहर, बाग-बगीचे देखता रहा। और वाकई गाँव मुझे बहुत अच्छा लगा।

मेरा काम गाँववालो को बीज, खाद बाँटना, उन्हे खेती के नये तरीको के बारे में बताना आदि था। परन्तु आहिस्ता-आहिस्ता मुझे पता चला कि मैं सरकारी नौकर न होकर बी डी ओ साहब का प्राइवेट नौकर मात्र था। अन्तर केवल इतना था कि मुझे वेतन सरकार से

मिलता था। बस। इसका परिणाम यह था कि बी. डी. ओ साहब की बात तो अलग रही, उनके घर के अन्य लोग, उनकी पत्नी, लड़के, लडकी तक मेरे उपर रोब गाँठते। यह मुझे स्वीकार नही था। उनकी पत्नी के एक बच्चा भी था गोद मे। अकसर वह मुझे उसके गदे, हगे-मूते कपड़े साफ करने को कहती जो मुझे किसी कीमत पर स्वीकार नही था। मैने साफ मना कर दिया। परिणाम यह हुआ कि बी. डी ओ. साहब ज़रा-ज़रा-सी बात पर मुझपर बिगडने लगे। उनके लडके से भी एक दिन मेरा झगडा हो गया। इससे पहले कि बात आगे बढती मैने एक दिन अपना सारा सामान उठाया और वापस अपने घर लौट आया।

बडे भाई ने मुझसे पूछा तो मैने उन्हे सारी बात बतायी। उन्होने कुछ कहा नही, माँ ने ज़रूर मुझे समझाया कि नौकरी इस तरह नही होती। नौकरी की पहली शर्त होती है अधीनता और जिसके अधीन नौकरी की जाती है उसकी हर बात माननी होती है। खैर, उन्होने आगे कहा—वहाँ नही तो कोई बात नही, यहाँ कोई और नौकरी खोजो।

मुझे क्या एतराज हो सकता था। मैं नौकरी खोजने लगा। परन्तु कही कुछ बना नही। एक जगह एक प्रेस मे कुछ दिनो के लिए मिली भी। परन्तु वहाँ भी मेरा झगडा हो गया। प्रेस से निकलते समय मेरी तलाशी ली जाती कि कही मैं टाइप चुराकर तो नही ला रहा हूँ। यह मुझे कतई स्वीकार नही था। इसके अलावा कम्पोज़िग का काम भी मुझे पसद नही था। मर-खपकर एक गैली तैयार करो, आँखे दुखाओ तो कही जाकर बारह आने मिले। कोई तीन सप्ताह बाद ही मैंने वह नौकरी भी छोड दी। उसके बाद फिर वही आवारा-गर्दी शुरू हो गयी।

इस बीच मेरी कुछ लडको से जान-पहचान हो गयी थी जो टेलिफोन का तार काटकर बेचते थे। यह काम बहुत आसान था। रात के सन्नाटे मे दो लडके टेलीफोन के दो खम्भो पर चढ जाते और उसके बीच सारे तार लोहे की तेज़ कैचियो से काट देते। नीचे कुछ और लड़के खड़े रहते जो उसे बटोर लेते। उसके बाद उसे बर्तन बनानेवालो की किसी

दूकान पर बेच देते थे। वैसे बेचने का काम तीसरा व्यक्ति करता था जो हमे तौल के हिसाब से पैसे दे देता। इसके बाद उसे तार को कही ले जाकर बेचना होता, इससे हमारा कोई मतलब नही था।

यह धधा बहुत आसान था। सिर्फ एक मुश्किल थी। वह यह कि रात देर तक मुझे घर से गायब रहना पडता, क्योकि यह काम रात देर गये ही होता था। इसका मैंने एक हल निकाल लिया था। मैं बाहर के कमरे मे रहने लगा था। और जब जरूरत पड़ती कमरे मे बाहर से ताला डालकर चला आता। लौटकर चुपचाप ताला खोलता और तख्त पर लेटकर सो जाता।

कभी-कभी तार दो-तीन दिनो तक हमे अपने पास रखना पडता। इसके लिए कोई नियम नहीं था। कभी मै अपने घर मे रख लेता तो कभी कोई और। बिक्री के बाद पैसे के बँटवारे मे हमारा कभी कोई झगडा नही हुआ।

परन्तु तभी एक दिन हमारे गिरोह का एक लडका कही साइकिल चोरी मे पकडा गया। यह मुझे मालूम नही था कि वह यह काम भी करता है। खैर, जो भी हो उसे कही साइकिल चुराते पकड़ लिया गया। और पुलिस ने उसे ले जाकर बहुत पीटा। उससे पूछा कि वह और क्या काम करता है तो उसने बता दिया कि वह तार भी काटता है। पुलिस ने उससे गिरोह के और लोगो का नाम पूछा तो उसने मेरा भी नाम बता दिया। नाम जानने के बाद पुलिस उसे साथ लेकर मेरे घर आयी। उस समय रात के कोई दो बज रहे थे। पुलिस ने उसीसे मुझे आवाज़ दिलवायी। उसकी आवाज़ सुनकर मैंने दरवाज़ा खोल दिया। बाहर निकलकर देखा। उसके साथ दो-तीन पुलिस कानस्टेबुल थे। मै घबरा गया। परन्तु मैने अपना विवेक बनाये रखा और उस लडके को पहचानने से भी इनकार कर दिया। परन्तु मेरा दुर्भाग्य यह था कि कुछ तार मेरे घर पर था। और वह लडका जानता था कि मै तार कहाँ रखता हूँ। उसने पुलिस को बता दिया था। वे तुरन्त घर मे घुस आये। उन्होंने

तार बरामद कर लिया। इत्तफाक से बडे भाई उन दिनो घर पर नही थे। वह कही अपने आफिस के काम से बाहर गये थे। मझले भाई थे। वह, माँ और भाभी सभी जाग गये। माँ पुलिस को घर मे देखकर रोने-धोने लगी। परन्तु पुलिसवालो ने उनकी एक न सुनी और मुझे लेकर जाने लगे। मँझले भाई ने जाकर पुलिसवालो से बात की, परन्तु जब उन्हे पता चला कि टेलीफोन के तार की बात है तो वह चुप हो गये। पुलिस मुझे उस लडके के साथ थाने ले आयी और हम दोनो को इकट्ठे हवालात मे बन्द कर दिया। उस लडके पर मुझे बहुत गुस्सा आया कि उसने मेरा नाम क्यो बता दिया। परन्तु फिर उसके शरीर की हालत देखकर मै सारी बात समझ गया। पुलिस ने उसे बुरी तरह मारा था। जगह-जगह उसके शरीर से खून निकल रहा था। चलने भी उसे तकलीफ हो रही थी। मुझे लगा कि शायद उसके पाँव का एक घुटना भी उन लोगो ने मार-मारकर तोड दिया था।

दूसरे दिन दस-ग्यारह बजे तक हमे हवालात मे रखा गया। उसके बाद हमे कोर्ट ले आया गया। कोई तीन बजे हमारी पेशी हुई और मजिस्ट्रेट ने हमे सीधे जेल भेज दिया। इस बीच मैं सोच रहा था कि शायद मझले भाई किसी समय मेरी खोज-खबर लेने, जमानत आदि करवाने आएँ। परन्तु वह नही आये। और मुझे लखनऊ डिस्ट्रिक्ट जेल की बैरक नम्बर तीन मे लाकर बन्द कर दिया गया।

उस बैरक मे और बहुत-से कैदी थे। कत्ल, चोरी और पता नही किस-किस जुर्मवाले। दूसरा लडका भी मेरे साथ जेल लाया गया था, मगर उसके शरीर मे इतनी चोटे थी कि उसको जेल के अस्पताल में भर्ती करा दिया गया था। मुझे इसी बात पर सन्तोष था कि मेरे ऊपर मार बिल्कुल नही पड़ी थी।

कोई बारह-तेरह दिन मैं जेल मे रहा। करीब-करीब उतने ही दिनो बड़े भाई बाहर रहे। बाहर से लौटते ही उन्होने मेरी जमानत का

इन्तज़ाम कर दिया। और मुझे जमानत पर छोड दिया गया। मंझले भाई इस बीच एक बार भी मुझे देखने नही आये।

जेल से छूटने के बाद मेरी आदतो मे कुछ सुधार आया हो ऐसा कुछ नही हुआ। बल्कि इसके विपरीत मेरा दायरा कुछ और बढ ही गया। क्योकि जेल में बारह-तेरह दिनो मे मेरी वहाँ के तमाम मुजरिमो से जान-पहचान हो गयी थी। उनमे से एक खलील भी था। खलील शहर का माना हुआ गिरहकट था। पुलिस कभी भी उसे गिरहकटी के जुर्म मे पकड नही पायी। वहाँ वह किसी और ही जुर्म मे बद था। मेरे छूटने के कुछ दिनो के बाद वह भी जेल से रिहा हो गया और हम दोनो की गहरी दोस्ती हो गयी। इसी शहर के एक मुहल्ले मे वह रहता था। लगभग रोज शाम को ही हम एक दूसरे से मिलते। हालांकि वह माना हुआ गिरहकट था परन्तु उसका कोई गिरोह वगैरह नही था। जेब काटने के उसके पास कई तरीके थे, ब्लेड और तेजाब से लेकर बायें हाथ की किन्ही भी दो उगलियो से जेब साफ करने तक। उसकी निगाह भी कमाल की थी। भरी बस में एक क्षण के अन्दर वह लोगो के चेहरे देखकर जान लेता कि किसकी जेब मे कितना माल है। और इसके बाद उसको कभी भी कुछ मिनटो से अधिक नही लगता था।

सिनेमा घर, बस स्टैंड, रेलवे स्टेशन आदि उसके प्रिय कार्यस्थल थे। इसके अलावा उसके कुछ नियम थे। जैसे दो जेबे काटने मे वह कम से कम पन्द्रह-बीस दिन का अन्तराल रखता था। और एक क्षेत्र मे किसीकी जेब काटने के बाद कम से कम एक वर्ष तक उस क्षेत्र मे दुबारा नही जाता था।

शुरू मे तो मै उत्सुकतावश ही उसके साथ रहने लगा। चुपचाप वह कही भी भीड मे खड़ा हो जाता और एक ही मिनट में दूसरे की जेब का माल उसकी जेब मे आ जाता। वह मुझे भी साहस दिलाता। उसका कहना था कि सौ मे निन्नान्वे व्यक्ति इस मामले मे लापरवाह होते हैं। उन्हे कभी यह अनुमान ही नही होता कि उनकी जेब कट

सकती है। साथ ही उसका यह भी कहना था कि जिन्दगी मे एक मनुष्य की जेब एक बार ही कटती है। दुबारा उसकी जेब नही कट सकती। और किसीकी जेब कट सकती है या नही यह उसके बगल मे दस सेकेण्ड खडे होने से ही पता चल जाता है। बस इसकी एक शर्त होती है। वह यह कि व्यक्ति के आस-पास कुछ भीड होनी चाहिए। अकेले व्यक्ति की जेब नही काटी जा सकती है। अकेले व्यक्ति के बगल मे खड़े होने से ही वह शक करने लगता है।

उसकी यह सारी बाते सुनकर भी बहुत दिन तक मेरी हिम्मत नही पडी। आखिर एक दिन मैने साहस किया। वह भी जेब काटने की गर्ज से नही, बल्कि एक प्रकार से अनुभव प्राप्त करने के लिए। पक्का निश्चय कर लेने के बाद भी मै डरा हुआ था। मैने खलील से कहा कि उसे मेरे साथ रहना होगा—जिसके लिए वह तुरन्त राजी हो गया—और यह कि पर्स निकालकर मै तुरन्त उसे दे दूंगा। इसके लिए उसे मेरे बिलकुल पीछे रहना होगा। वह इस बात के लिए भी राजी हो गया। उसने यह भी कहा कि यदि मैं पकडा गया तो वह मुझे पीटेगा और पूरी कोशिश करेगा कि मुझे स्वय पीट-पाट कर वही छुड़वा ले। ऐसी स्थिति मे जैसे ही मुझे मौका मिले मुझे भाग जाना था। अन्यथा यदि मै पुलिस स्टेशन पहुँच ही गया तो उसने कहा कि वह मुझे भाग-दौडकर छुडवा लेगा। आखिर सब कुछ तय करके हम लोग शाम को निकले। हजरतगज मे ठीक कोतवाली के सामनेवाले बस स्टैण्ड पर हम खड़े हो गये। खासी भीड़ थी। खलील ने एक उजबक-से लगनेवाले बुशर्ट पैण्ट पहने हुए व्यक्ति की ओर इशारा किया। वैसे मेरी निगाह भी उसीपर थी। मै उसके पास सटा हुआ खडा था। खलील मेरे पीछे था। मैंने सोच रखा था कि जैसे ही बस आयेगी और लोग उसमे चढने के लिए बढेंगे वैसे ही मैं अपना काम करूँगा। आखिर यही हुआ। बस आयी और सब उसकी ओर लपके। मैं भी। और इससे पहले कि वह बस मे दाखिल होता उसका पर्स जो उसकी पतलून की

हिप पाकेट मे था, मेरे हाथ मे था। शायद यह सब कुछ मैंने बहुत ही फूहडपन से किया था। क्योकि उस व्यक्ति ने तुरन्त मुडकर देखा, परन्तु मै तब तक पर्स खलील के हाथो मे पहुंचा चुका था। मुझे बस मे नही चढना था परन्तु जिस ढग से उस व्यक्ति ने मुडकर देखा था मैं कुछ सहम-सा गया था और पीछे-पीछे मैं भी बस मे चढ गया। बस मे चढकर मैंने मुडकर देखा। खलील का पता नही था।

मुश्किल से एक-डेढ मिनट बस वहाँ रुकी होगी। इसी बीच खासे लोग उतरे और चढे। बस दुबारा चल दी। मुझे बैठने को जगह नही मिली। उस व्यक्ति को भी नही जिसकी जेब मैंने काटी थी। तभी अचानक उस व्यक्ति को जैसे कुछ याद आया। उसने अपना हाथ जेब पर ले जाकर देखा और सहमा ऐसा लगा जैसे उसके चेहरे का सारा खून भाप बनकर उड गया हो।

—मेरी जेब कट गयी। उसने बिना किसी को सम्बोधित किये हुए कहा। आसपास खडे हुए जिन-जिन लोगो ने उसकी बात सुनी सब अपनी-अपनी जेबे देखने लगे। तब लोगों ने उससे हमदर्दी दिखानी शुरू कर दी।

—कितने रुपये थे? किसी ने पूछा।

—कैसे क्या हुआ? किसी और ने कहा।

कण्डक्टर ने भी बात सुनी। वह भी पूछने लगा।

—कहाँ थे रुपये?

—पर्स मे।

—पर्स रखना तो आजकल बहुत खतरनाक है। था किस जेब मे?

—हिप पाकेट मे।

—तभी।

—अजी साहब, मैंने तो हिप पाकेट ही रखनी छोड दी। बहुत ही बेकार होती है यह।

—कितने रुपये थे? कण्डक्टर ने पूछा।

—पूरी तनख्वाह थी। पाच सौ से ऊपर। उस व्यक्ति ने जवाब दिया। वह बराबर लोगो के चेहरो पर गौर कर रहा था। तब उसने एक व्यक्ति से कहा—आप थे मेरे पीछे?

—नही तो।

—आप ही तो थे।

एक और व्यक्ति ने उसका कालर पकड लिया। निकालो रुपये चुपचाप।

वह व्यक्ति रुआँ-सा हो गया। —मेरी तलाशी ले लीजिए। उसने कहा। मैं तो बहुत पीछे से आ रहा हूँ।

बस चली जा रही थी।

—ऐसा है सभी लोग अपनी तलाशी दे दे। एक व्यक्ति ने सुझाव रखा।

—हाँ-हाँ। इसमे कोई बेइज्जती नही। किसी और ने सहमति दी।

आखिर यही तय हुआ। कण्डक्टर गेट पर खडा हो गया और उस व्यक्ति ने बारी-बारी से सबकी तलाशी ली। इसके बाद वह फूट-फूटकर रोने लगा। किसी पुरुष को इस तरह रोते मैने पहली बार देखा। वह कहने लगा कि कल उसकी पत्नी का अप्रेशन होना है। बच्चो की फीस जानी है। अब वह क्या करेगा। मुझे बहुत अफसोस हुआ। मैने वही कसम खायी कि मै अब जिन्दगी मे दुबारा यह काम न करूँगा।

शाम को मै खलील से मिला।

मैने उससे सारी बात बतायी तो वह हँसने लगा।

—उसका पता मेरे पास है, मैने कहा, क्यो न हम लोग रुपये उसे वापस कर दे।

इसपर खलील और जोर से हँसा। —निरे बेवकूफ हो तुम। उसने कहा—तुम समझते हो उसका कोई काम रुकेगा। कही न कही से वह इन्तजाम कर लेगा। और खलील ने पर्स मेरे सामने रख दिया। उसमें पाँच सौ अडतीस रुपये थे। क्वीन मेरी अस्पताल का एक नुस्खा

था। शायद उसकी पत्नी से सबधित। कुछ आफिस से सबंधित कागजात भी थे।

—तुम रख लो रुपये यह। मैने खलील से कहा। परन्तु उसने इनकार कर दिया। —तुम्हारी कमाई है, उसने कहा, तुम्ही रखो। बस चलो कही बैठकर कुछ खाते-पीते है। मुझे रुपये किसी खास काम में तो लाने नही थे। अत हम लोग एक अच्छे होटल मे चले गये। होटल क्यो, बार मे। वहाँ हम लोगो ने खासी शराब पी और खाना खाया।

कोई साढे चार सौ रुपये मेरे पास बचे। एक बार फिर मैने उन्हें खलील को देना चाहा। परन्तु वह राजी न हुआ। आखिर मै चुप हो गया और रुपये अपने पास रख लिये। मन ही मन मैने तय किया था कि यह रुपये मै उस व्यक्ति को मनीआर्डर से भेज दूँगा। उसका नाम ओर पता मुझे बस मे ही मालूम हो गया था। मैने सोचा, उसी पते पर भेज दूँगा और जो रुपये खर्च कर डाले है उसके लिए माफी माँग लूँगा।

परन्तु हुआ यह कि रात को मै छुन्नू बाबू के घर चला गया और दो-तीन घण्टो मे सारी रकम वहाँ हार गया। मुझे बहुत अफसोस हुआ, परन्तु अब हो ही क्या सकता था?

कोई बारह बजे छुन्नू बाबू के घर से लौटकर मै सो गया।

इसी बीच टेलीफोन के तारवाला मेरा केस समाप्त हो गया था। बड़े भाई ने भाग-दौड करके एक अच्छा वकील मेरे लिए कर दिया था। उसने बहुत ही होशियारी से केस लडा। सबसे महत्वपूर्ण बात जो उसने अपनी जिरह मे कही, वह यह थी कि सरकार के पास इस बात का क्या प्रमाण है कि तार टेलीफोन का तार ही है। ऐसा कोई निशान तो उस पर है नही। इसके अतिरिक्त उसने सरकारी गवाहो को भी झूठा साबित कर दिया। वैसे वे झूठे थे भी। क्योकि उस लडके के अलावा मेरे घर कोई नही आया था जब कि पुलिस ने तीन ऐसे गवाह पेश किये थे जिनके बारे मे उसका कहना था कि तार उनकी मौजूदगी मे मेरे घर से

निकला। परन्तु जब मेरा वकील उनसे बहस करने लगा कि मेरे मकान के दाहिनी ओर म्युनिस्पालटी का पाइप है या बायी ओर, नीम का पेड़ गली मे कहाँ है—जो कही नही था—शकरजी का मदिर कितनी दूर है आदि, तो वे बगलें झाँकने लगे और कोर्ट के सामने झूठे पड गये। मैं साफ बरी हो गया। हाँ, मेरे साथवाले लडके को साइकिल चोरी करने का प्रयत्न करने के जुर्म मे तीन मास की कैद हो गयी।

इसी बीच एक बात और हुई। बडे भाई का कानपुर ट्रान्सफर हो गया। शुरू मे तीन-चार महीने तक तो वह रोज लखनऊ से कानपुर आते-जाते रहे। सुबह कोई साढे छ बजे वह घर से निकल जाते, सवा सात या साढे सात के आस पास चारबाग स्टेशन से गाडी पकडते और शाम को वहाँ से साढे छ की कोई गाडी पकडकर रात नौ बजे तक घर लौटते। परन्तु अधिक दिनो उनसे यह चला नही और उन्होने कानपुर में ही कोई मकान खोज लिया और वहाँ शिफ्ट हो गये।

जिस दिन वह गये माँ बहुत रोयी। ट्रक आकर गली के नुक्कड पर खड़ा हो गया। दो मजदूर और मैं सामान ढो-ढोकर उसपर रखते रहे। इस सारे बीच माँ रोती ही रही। —जाने इस घर को अब क्या होगा, उन्होने कहा, मैंने कभी न सोचा था कि एक दिन सब कुछ इस तरह बिखर जायेगा। खैर, जहाँ भी तुम रहो खुश रहो। उन्होने भाई को आशीर्वाद दिया। जब ट्रक जाने लगा तो वह सडक तक आयी। बडे भाई भी ट्रक मे ही बैठकर गये। तुम फिक्र मत करो, उन्होने चलते समय माँ से कहा, कानपुर-लखनऊ में कोई फर्क नही है। एक हफ्ते मे ही मैं तुमको ले जाऊँगा आकर। वहाँ तुम आराम से रहना। और जब मर्जी आये यहाँ चली आना। मैं भी उनके साथ ट्रक पर आया। कानपुर पहुँचकर मैने नये घर मे उनका सारा सामान कायदे से लगवाया। दो-तीन दिन तक मै वहाँ रहा। तब वापस चला आया। वापस आकर मैं पूरी तरह से आज़ाद हो गया। बड़े भाई का थोडा बहुत डर था, सो वह कानपुर चले गये थे। मझले भाई को मैंने कभी कुछ समझा ही नहीं।

वैसे उन्होने भी कभी मुझे छोटा भाई समझा हो, मुझे सन्देह है। आप आश्चर्य करेंगे कि आज भी मुझे नही मालूम कि वह कहाँ है। बीच मे उन्हे अलमोडा मे कही नौकरी मिल गयी थी और वह वहाँ चले गये थे। उस समय से अब तक वह वही है या कही और ट्रान्सफर हो गया उनका, मुझे आज तक पता नही।

हाँ तो कानपुर से वापस आने के बाद मै पूरी तरह आजाद हो गया। अब मेरे पास कोई काम नही था सिवाये दिन-भर आवारागर्दी करने के। दिन मेरा प्राय खलील के साथ गुजरता और रात छुन्नू बाबू के घर। खलील गिरहकट था। बेरहम और बेदिल था, किसीकी भी जेब काटने के बाद उसने पलटकर यह नही सोचा कि उसके ऊपर यानी जिसकी जेब उसने काटी है उसपर क्या बीतेगी ? परन्तु वह एक सच्चा दोस्त था। आज भी मैं उसके बारह-तेरह सौ रुपये का देनदार हूँ। परन्तु उसने कभी मुझसे इस बारे मे बात नही की बल्कि यदि मै अभी भी उसे इसी समय यहाँ बुलवाऊँ और चार-पाँच सौ रुपये का सवाल करूँ तो वह मुझे दो-तीन घण्टे मे लाकर दे देगा। बिना कोई बात पूछे। वैसे वह जेल मे मुझसे मिलने भी आता रहा है और जब भी आया है मेरे लिए सिगरेट, फल आदि लाता रहा है। और उन दिनो भी वही मेरा खर्च बर्दाश्त करता था बिना किसी सकोच या हिचकिचाहट के। इस तरह सारा दिन उसके साथ कटता था और रात छुन्नू बाबू के घर पर। वैसे खेलता मै वहाँ तभी था जब मेरे पास रुपये होते थे। परन्तु जाता मै रोज था।

रुपये होने की बात तभी होती थी जब मै खलील से उधार लेता था। या फिर माँ को समझा-बुझाकर उनसे ले लेता था—उनके पास दो ढाई हजार रुपये थे। कहाँ से आये मुझे पता नही। हो सकता है, पिता छोड गये हो—या फिर उनके बक्से से चोरी करता था। कसमे खाने के बावजूद मैने उनके बक्से से दो-तीन जेवर और रुपये चुराये थे। हर बार मै यही सोचता कि जीतकर मै उन्हें जेवर बनवा कर दूँगा। या नकद

रुपये दूंगा। परन्तु हर बार मैं हार गया। यह तो बहुत बाद मे मुझे पता चला कि वहाँ एक शार्पर आता था। कोई श्रीवास्तव नाम का। हुआ यह कि खलील से मैने ज़िक्र किया तो उसने एक आदमी मेरे साथ कर दिया। कहा, इसको ले जाओ अपने साथ। फिर तुम न हारोगे। परन्तु वह आदमी मेरे साथ वहाँ जाने के बावजूद भी खेला नही। लौटकर उसने बताया कि वह वहाँ नही खेल सकता, क्योकि वहाँ श्रीवास्तव खेलता है जिसे वह जानता है और जो माना हुआ शार्पर है। शार्परो के बीच शायद इस तरह का अनकहा समझौता होता है कि एक जहाँ जाता है दूसरा वहाँ नही जाता। पता नही कैसे उसने मुझे यही बता दिया कि श्रीवास्तव शार्पर है। वैसे उसने मुझे नही बताया था। खलील ने ही मुझे बताया था। केवल इस उद्देश्य से कि मैं वहाँ न जाऊं। परन्तु मुझे बहुत गुस्सा आया यह जानकर। मेरी अपनी कोई बात नही थी। परन्तु छुन्नू बाबू श्रीवास्तव के ज़रिये कितने ही और लोगो को भी लूटते थे। उनमे एक सेठ भी था।

सेठ मेरे ही मुहल्ले मे रहता था। आयु होगी कोई पैतालीस वर्ष। वह यूनियन कार्बाइड मे कोई छोटा-मोटा अफसर था। खासी तनख्वाह उसे मिलती थी। भरा-पूरा परिवार था। पत्नी और पाच बच्चे। सबसे बडी लडकी थी सीता। वह बी ए मे पढती थी। उसके बाद दो लडके थे, एक नवे में और दूसरा सातवे मे। उसके बाद फिर दो छोटी लडकियाँ थी।

सेठ अच्छे स्वभाव का मृदुभाषी व्यक्ति था। मुहल्ले में किसीके लेने-देने मे नही था। परन्तु उसमे दो बुरी लते थी। एक जुआ, दूसरी शराब। इन दोनो की वजह से उसके घर की आर्थिक हालत काफी खराब थी। मेरा ख्याल है कि उसके ऊपर खासा कर्जा था।

शायद ही कभी मैने सेठ को छुन्नू बाबू के घर जीतते हुए देखा हो। अक्सर ही वह हारकर उठता। परन्तु नियमपूर्वक वह वहाँ एक क्वार्टर व्हिस्की मंगाकर रोज़ पीता था। बाद मे यह मात्रा बढकर अद्धे तक

हो गयी थी। छुन्नू बाबू का एक नौकर था राधे। वह यही काम करता था। लोगो को पान-सिगरेट लाकर देता। पानी पिलाता और इसके अलावा और जो सामान भी लोग खाने-पीनेवाला बाज़ार से मंगाते वह लाकर देता। इसके बदले मे उसको कुछ न कुछ टिप मिल जाती थी। वैसे छुन्नू बाबू उसे शायद इसलिए रखे थे कि यदि कोई व्यक्ति कुछ झगडा-झझट करे तो वह उसे सभाल सके। क्योंकि वह काफी बलिष्ठ था और एक-दो आदमी को सभालना उसके लिए कोई बडी बात नही थी।

सेठ से मेरा पहला परिचय छुन्नू बाबू के घर पर ही हुआ था। बाद मे दो-एक बार मैं उसके घर भी गया। और उसके घर जाकर जब मुझे उसके घर का सारा हाल पता चला तो मुझे अफसोस हुआ।

पहली बार मैं उसके घर उसे नशे की हालत मे रिक्शे पर छोडने गया था क्योकि छुन्नू बाबू और मेरे घर के बीच ही उसका घर पडता था। अतः उस दिन जब उसकी हालत काफी खराब हो गयी और वह गिरने-पडने लगा तो मैने स्वय अपनी तरफ से उसे उसके घर छोडने का जिम्मा लिया। उसके बाद वह स्वय मुझे अपने घर ले गया और वहाँ ले जाकर उसने मुझे शराब पिलायी। इसके बाद तो महीने मे अक्सर ही दो-तीन बार ऐसा हो जाता। कभी मै स्वय उसके घर चला जाता। ऐसे ही एक मौके पर जब मै उसके घर पर गया और वह था नही तो उसकी पत्नी ने मुझे आदर से बिठाया, चाय बनाकर पिलायी और हाथ जोडकर मुझसे कहने लगी कि मै उसे समझाऊँ कि वह जुआ खेलना और शराब पीना छोड दे। उसकी पत्नी ने मुझसे कहा कि—भइया, तुमको शायद मालूम न हो इनको एक हजार तनख्वाह मिलती है। फिर भी हम लोग खाने-पीने को मुहताज रहते है। अक्सर बच्चो की फीस तक देने के पैसे नही होते। लल्लू का इस वर्ष नाम कटाना पडा इसीलिए। लल्लू उनके छोटे लडके का नाम था जो सातवे मे पढता था। जब उसकी पत्नी मुझसे इस तरह बात कर रही थी तो सीता, उनकी बडी लडकी वही

खडी थी। वह अपनी आयु से कुछ अधिक ही गम्भीर लगती थी और हमेशा सादे सफेद कपडे पहनती थी।

मुझे सेठ की पत्नी की ये बाते सुनकर बहुत अफसोस हुआ और मैंने उन्हे आश्वासन दिया कि मै अपनी पूरी कोशिश करूँगा कि सेठ को सही रास्ते पर ला सकूँ। पता नही क्यो उस दिन मुझे लगा था कि मैं यह काम कर सकता हूँ। यह बात और है कि बाद मे मैं इसमे बुरी तरह असफल हो गया।

जिस दिन यह बात हुई थी उसके तीसरे-चौथे दिन रक्षाबधन था। रक्षाबधनवाले दिन अचानक सीता को अपने घर मे देखकर मैं चौक पडा। मुझसे ज्यादा आश्चर्य तो माँ को हुआ। वह उसे पहचानती भी नही थी। मैने ही उन्हे बताया कि वह सेठ साहब की लडकी थी जो अपने ही मुहल्ले मे पार्क के पास वैद्यजीवाली गली मे रहते थे। माँ ने उसे प्यार से बिठाया और उसे चाय आदि पिलायी और जब उसके बाद सीता ने मुझे राखी बाँधी तो वह हृदय से गदगद हो उठी। मैंने भी मन ही मन गर्व अनुभव किया क्योकि सीता पहली लडकी थी जिसने मुझे राखी बाधी थी। वैसे मेरी बहन ने भी मुझे बचपन मे कभी राखी बाधी होगी परन्तु उसकी मुझे याद नही। मुझे अफसोस भी हुआ कि उस दिन मेरे पास एक भी रुपया नही था। लेकिन माँ कुछ इतनी प्रसन्न हुई कि मेरी मजबूरी भापकर उन्होने अपने पास से ग्यारह रुपये निकालकर मुझे दिये कि मै सीता को दे दूँ। मैने दे दिया। सीता ले नही रही थी। परन्तु फिर बाद मे मान गयी। वैसे यदि उस दिन मेरे पास सौ रुपये होते तो मै सौ रुपये उसे दे देता।

इस घटना के बाद मैने सेठ को समझाने का अपना पूरा प्रयत्न किया कि वह जुआ और शराब छोड दे, परन्तु उसने नही छोडा और लगातार जुए मे हारता रहा। तभी जब मुझे पता चला कि छुन्नू बाबू के घर शार्पर आता है तो मेरा खून खौल उठा।

यह बात पता चलने के बाद मैंने पहला काम यह किया कि स्वय छुन्नू बाबू के घर खेलना बन्द कर दिया। मैं वहाँ जाता ज़रूर परन्तु चुपचाप बैठा रहता। वैसे भी मेरे पास इतने रुपये नही होते थे कि मैं रोज़ खेल सकूं। परन्तु शार्पर वाली बात पता चलने के बाद तो मैंने कसम ही खा ली। हाँ मै जाता ज़रूर और बैठकर देखता रहता कि श्रीवास्तव करता क्या है। जब भी वह पत्ते बाटता मैं उसे गौर से देखता। पर मैं कभी कुछ समझ नही पाया। वह लापरवाही से पत्ते समेटकर उन्हे दो हिस्सो मे लगभग बराबर-बराबर दोनो हाथो मे लेकर तीन-चार बार फुर्री लगाता तब अपने दाहिनेवाले व्यक्ति से गड्डी कटवाता। हाँ, यह बात मैने ज़रूर देखी कि गड्डी कटवाने के बाद वह उन्हे एक दूसरे पर रखकर दाहिने हाथ मे पत्ते लिये हुए, हाथ-मुंह तक ले जाता, अगूठे मे थूक लगाता और तब बाँटने लगता। कभी एक हाथ से गड्डी पकडे-पकडे तो कभी दोनो हाथो से। और जब-जब वह बाँटता तो या तो वह स्वय जीतता या फिर प्रकाश बाबू जीतते जिनके बारे मे वहाँ मशहूर था कि टार्सन लुबरो नाम की किसी फर्म मे बिज़नेस एक्ज़िक्यूटिव थे। हालाकि बाद मे मुझे पता चला, वे वहाँ केवल टाइपिस्ट थे। श्रीवास्तव के बारे में भी यह कहा जाता था कि वह राजा महमूदाबाद का सेक्रेटरी था जब कि वह कही कुछ नही करता था। मात्र शार्पर था और उसीकी कमायी खाता था। परन्तु यह सब बातें उन दिनो मुझे पता नही थी। यह तो बाद मे मैने पता लगाया।

खैर, आठ-दस दिनो तक मैं सब देखता रहा और कतई यह समझ न सका कि श्रीवास्तव करता क्या है। ऐसी हालत मे मेरे लिए यह निर्णय लेना कठिन था कि मै क्या करूँ। कभी मै सोचता कि मै स्वय खेलने बैठूं और जब श्रीवास्तव पत्ते बाँटे तो किसी प्रकार का दगा खडा दूं। जैसे, काफी कवर करने के बाद उससे कहूँ कि वह पत्ते बदल ले। और जब वह तैयार न हो तो उसकी फजीहत करूँ। कभी सोचता कि वहाँ आनेवाले लोगो से अलग-अलग अकेले मे मिलकर उसके बारे मे

बता दूं। कभी दिमाग में आता कि किसी दिन जाकर पुलिस को खबर कर दूं और क्लब ही बन्द करवा दूं। क्योंकि मैंने कही सुना था कि रजिस्टर्ड क्लबो मे भी तेरह पत्तो का खेल यानी रमी की तो आज्ञा है परन्तु तीन पत्तों की नही है। परन्तु मैने उस तरह का कुछ भी नही किया। तभी मैने सोचा कि कम से कम सेठ को तो बता ही दूं कि वह वहाँ न खेले। या कम से कम वह बाजी तो न ही खेले जिसे श्रीवास्तव बाँटे। परन्तु तभी एक बहुत बडी दुर्घटना हो गयी।

सेठ के घर मे एक व्यक्ति आया करता था। सिधवानी। सिधवानी सेठ के साथ ही यूनियन कार्बाइड मे काम करता था। इंजिनियर या ऐसे ही किसी पद पर वहाँ था। अक्सर ही वह सेठ के साथ उसके घर आता और कभी-कभी उसके साथ बैठकर शराब भी पीता। वैसे वह सेठ की तरह शराब पीने का आदी नही था। बस, कभी-कभी ही उसका साथ दे दिया करता था। तभी या तो सेठ के स्वय कहने से या फिर जैसे भी यह हुआ हो वह सीता को पढाई मे मदद करने लगा। धीरे-धीरे यह सिलसिला रोज का हो गया और शाम आफिस से लौटकर वह सीधे सेठ के घर आता और दो-एक घटे वहाँ रहकर सीता को पढाता। आफिस से अक्सर वह सेठ के साथ ही लौटता और जबकि सेठ अपने घर न जाकर छुन्नू बाबू के घर आ जाता वह सीधे उसके यहाँ चला जाता।

सिधवानी देखने में अच्छा खूबसूरत जवान था। क्वाँरा भी था। अच्छी जगह पर नौकर था और मोटी तनखवाह पाता था। प्राय वह सेठ के घर मे उनके बच्चो के ऊपर पैसे भी खर्च करता और सेठ की पत्नी का जो स्वभाव था उसके कारण वह घर के एक सदस्य की भाति हो गया था। जो भी हरकत उसने की हो या जैसे भी यह हुआ हो सीता उसे प्यार करने लगी। शायद उसने सीता से यह भी वायदा किया था कि वह उससे विवाह कर लेगा। सीता एक सुदर सुशील और भोली-भाली लडकी थी। वह उसके कहने मे आ गयी और अब घर के बाहर

भी दोनो मिलने लगे। यहाँ तक कि वह सीता को अपने घर पर भी ले जाता जहाँ वह अकेला रहता था। और सम्बन्ध भी उसने सीता से स्थापित कर लिये थे। अपने पत्रो मे, जो मैने बाद मे देखे, वह सीता को यही लिखता कि वह उसे पत्नी के रूप मे स्वीकार कर चुका है। बस, सीता को इक्कीस वर्ष की आयु तक प्रतीक्षा करना है क्योकि इक्कीस वर्ष से पहले सिविल मैरिज सम्भव नही है। वैसे सीता शायद इक्कीस की हो रही होगी, परन्तु हाई स्कूल सर्टिफिकेट मे उसकी आयु कोई एक साल कम लिखी थी।

तभी सीता को उससे गर्भ हो गया। और इसके बाद स्थिति ने मोड लेना शुरू किया। शुरू मे तो दो-एक महीने वह ऐसे ही टालता रहा। वह उन दिनो की बात थी जिन दिनो सीता मेरे घर मुझे राखी बाँधने आयी थी। साथ ही साथ वह सीता को झूठे आश्वासन देता रहा कि आखिर वह उससे विवाह करेगा ही इसमें घबराने की क्या बात है। वैसे कुछ दवाएँ भी उसने लाकर सीता को खिलायीं। दो-एक इन्जेक्शन भी दिये जैसा कि बाद मे उसके पत्र पढने से मुझे पता चला, परन्तु कुछ काम न आया। इस सारे बीच वह दूसरी जगह नौकरी भी खोज रहा था। तभी एक दिन वह बिना किसी को बताये नौकरी छोडकर चला गया। शायद उसे कही और नौकरी मिल गयी थी।

सीता को जो अभी तक यह विश्वास बाधे बैठी थी कि वह उससे विवाह करेगा, जब यह पता चला तो उसके पैरो के नीचे से जमीन खिसक गयी। शुरू मे तो उसने अपने पिता यानी सेठ से उसके बारे में पूछताछ की। परन्तु सेठ ने बताया कि वह क्या आफिस मे कोई भी नही जानता कि वह कहाँ गया। वहाँ लोग यही जानते थे कि उसकी माँ सख्त बीमार थी और चूकि उसे छुट्टी नही मिल रही थी इसलिए वह त्यागपत्र देकर चला गया। सीता कुछ दिनो तो उसकी प्रतीक्षा करती रही। उसने सोचा कि हो सकता है, उसकी माँ की बीमारीवाली बात सही हो और वह लौट ही आये कुछ दिनो मे। या फिर उसका

पत्र ही आये। परन्तु जब पन्द्रह-बीस दिन गुजर गये और न वह आया न उसका पत्र तो सीता की बेचैनी बढने लगी। अत मे एक दिन उसने मुझे बुलवाया और मुझसे उसका पता लगाने को कहा। उसने मुझे पूरी बात नही बतायी। बल्कि एक तरह से झूठ बोली। उसने मुझसे बताया कि उसकी कोई सहेली उससे प्यार करती थी और वह उसके बिना जान देने को कह रही है। अत मैं उसका पता लगा दूँ। सीता ने मुझे यह भी बताया कि उसके माता-पिता जालधर मे कही रहते थे और वहाँ से उसका पता चल सकता था।

मुझे आज भी अफसोस है कि सीता ने मुझसे सही बात नही बतायी, वरना मै उसे आकाश-पाताल जहाँ से भी होता खोजकर लाकर सीता के सामने खडा कर देता और उससे कहता कि यदि तुम्हे जान प्यारी है तो इस लडकी के पैर छुओ और इसे मेरे साथ कोर्ट ले चलकर विवाह करो। और मुझे विश्वास है कि उसे यह करना पडता। परन्तु सीता मुझसे झूठ बोली जिसके कारण मैंने उसका पता लगाने मे अधिक रुचि नही ली।

इस बीच जब भी मैं सेठ के घर जाता सीता को बहुत उदास देखता। एक-दो बार मैंने उसकी आँखों से आँसू भी देखे परन्तु मै यही समझता रहा कि वह घर की परेशानियो को लेकर चिन्तित है। एक या शायद दो बार वह मुझे लेकर किसी लेडी डाक्टर के पास भी गयी परन्तु मै फिर भी कुछ न समझ सका। मै सीता को इतना पवित्र—और पवित्र वह अवश्य थी क्योकि सिधवानी को छोड़कर उसका कभी किसीसे कोई सबध नही था और उस सिलसिले में भी मुझे विश्वास है पहल सिधावनी ने ही की होगी—और भोली समझता था कि मै स्वप्न मे भी जो बात थी उसकी कल्पना नही कर सकता था।

सीता ने जब मुझसे पूछा कि मैंने पता लगाया या नही तो मैं झूठ बोल गया। मैने उससे कहा कि मेरा एक मित्र जालधर मे रहता है, मैंने उसे लिख दिया है वह पता लगा देगा।

—आप स्वयं वहाँ नहीं जा सकते? खर्चा मैं दे दूंगी। बल्कि यदि सम्भव हो तो मुझे भी साथ ले चलिए। सीता ने मुझसे कहा।

मै कुछ इतना मूर्ख था, फिर भी मै बात की गहराई को समझ नही सका और फिर झूठ बोल गया कि तुम चिन्ता न करो मै जाकर सब पता लगा कर लाता हूँ। और इसके बाद चार-छ. दिनो तक मै सेठ के घर नही गया। उसके बाद एक दिन उसके घर जाकर वैसे ही सीता से कह दिया कि मै गया था परन्तु कही कुछ पता नही लगा।

उस दिन मैने गौर किया कि सीता ने अपने चेहरे पर कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नही की। शायद तब तक वह अपना निर्णय ले चुकी थी।

इसीके कोई तीन-चार दिन बाद मै छुन्नू बाबू के यहाँ बैठा श्रीवास्तव को पत्ते बाटते देख रहा था। सेठ भी अन्य लोगो के साथ बैठे खेल रहा था। उसने व्हिस्की मँगा ली थी और उसे भी पीता जा रहा था। साथ मे धनिएवाले आलू थे जिसे राधे ने कही से लाकर दिया था। तभी किसीने छुन्नू बाबू का दरवाजा खटखटाया। जैसा कि ऐसे अवसरो पर होता था सभी लोग सतर्क हो गये। बोर्ड के रुपये एक किनारे कर दिये गये और राधे को कहा गया कि वह जाकर देखे कौन है। राधे ने लौटकर बताया कि सेठ का लडका है, मुन्ना नाम बता रहा है। सेठ ने स्वीकार किया कि हाँ, उसके बडे लडके का नाम मुन्ना है और वह उठकर दरवाज़े पर चला गया। उन दोनो मे जो भी बात हुई हो सेठ अपने पत्ते, व्हिस्की, आलू आदि छोडकर उधर ही से चला गया। राधे ने लौटकर बताया कि उन्होने कुछ कहा नही, लडके से बात करके उधर से ही चले गये। सेठ के पत्ते किसी और ने देखकर गड्डी मे मिला दिये। और खेल बदस्तूर जारी हो गया।

मै थोडी देर बैठा रहा। तब मुझे कुछ चिन्ता हुई और मैं उठकर सेठ के घर आ गया। वहाँ रोना-धोना मचा था। सीता ने आत्महत्या कर ली थी। उसने स्वय को एक कमरे मे बन्द करके, अपने शरीर पर मिट्टी का तेल छिड़कर आग लगा ली थी। उसकी लाश कमरे में पड़ी

थी । कमरा अब भी अन्दर से बन्द था और मुहल्ले के कुछ लोग जो वहाँ पहुंच गये थे दरवाजा तोडने की बात कर रहे थे। सेठ के बच्चे और उसकी पत्नी बुरी तरह रो रहे थे । सेठ की समझ मे नही आ रहा था कि वह क्या करे । तभी मैने देखा, कमरे मे एक खिडकी भी थी । मैने कोयले के पास पडी हथौडी उठायी और उससे खिडकी के दो सीखचे तोड़कर अन्दर घुस गया । अन्दर जाकर मैने कमरे का दरवाजा खोल दिया। कमरे का दरवाज़ा खोलकर जैसे ही मै बाहर निकला तब तक पुलिस आ चुकी थी । पता नही किसने शायद मुहल्लेवालो में से ही किसीने उन लोगो को खबर कर दी थी । हो सकता है सेठ के मकान मालिक ने यह काम किया हो क्योंकि अक्सर समय से किराया न दे पाने के कारण उसकी सेठ से पटती नही थी । जो भी हो । दरवाजा खुलते ही सेठ की पत्नी सीता की लाश से जो बुरी तरह जली हुई थी लिपटकर रोने लगी। बच्चे भी रोने लगे। और तभी पुलिस ने सारे लोगो को वहाँ से हटाया । कुछ लोग चले गये । वैसे ज्यादातर फिर भी बने रहे । हाँ, एक किनारे ज़रूर हो गये । तब उन्होने अपनी पूछताछ शुरू की। खिड़की के सीखचो के बारे मे भी उन्होने पूछा कि किसने तोडा । मैने अपने को बताया तो वह मेरे बारे मे भी पूछने लगे । तब तक एक कान्स्टेबुल ने जो मुझे जानता था सब-इन्स्पेक्टर से कुछ कहा और सब-इन्सपेक्टर ने मुझे एक ओर अलग कर दिया। बोला तुमको थाने चलना होगा । वहाँ बयान देना होगा ।

मै चुप हो गया ।

कुछ और लोगो ने सब-इन्सपेक्टर से बात की कि वह पचनामा करके केस खतम कर दे । परन्तु वह राजी नही हुआ । उसने एक कान्स्टेबुल को कही टेलीफोन करने भेजा। थोड़ी देर में अस्पताल की गाडी आ गयी और लाश और उसके साथ मुझे और सेठ को लेकर पुलिस-वाले थाने आ गये । थाने से लाश अस्पताल भेज दी गयी रात-भर मार्चरी में रखने के लिए ।

सुबह सब-इन्सपेक्टर ने कहा कि पोस्टमार्टम होगा तभी लाश आपको मिलेगी।

इसके बाद सेठ का तथा मेरा बयान लिया उसने और बोला कि आप लोग घर जाइएगा।

हम लोग लौट आये।

मैं अब भी समझ नही पा रहा था कि सीता ने आत्महत्या क्यो की। तभी मेरे दिमाग मे आया कि हो सकता है, वह कोई पत्र आदि छोड़ गयी हो। वापस जाकर मैने अपने मन की यह शका बतायी और तब सीता का बक्सा, उसकी पुस्तके, अल्मारी आदि खोली जाने लगी। तभी सिधवानी के सीता के नाम के ढेर सारे पत्र मिले जो उसने लिखे थे।

—हो सकता है पुलिसवाले आकर आपके घर की तलाशी लें। अब यह पत्र आप अपने पास मत रखिये, मैंने सेठ से कहा, मैं इन्हें ले जाता हूं। यदि ज़रूरत पडे तो आप मुझसे ले लीजिएगा।

सेठ राजी हो गया और सारे पत्र मैं अपने घर ले आया। मैं रात-भर उन्हें पढता रहा। उन्हें पढकर सारी बात मेरी समझ में आ गयी। वैसे गर्भवाली बात तो मैं फिर भी नही समझ सका। मेरे मन मे बस एक ही बात आ रही थी उस समय कि यदि मै सिधवानी को कही पकड़ पाऊं तो उसे जिन्दा सीता की लाश के साथ जला दूं।

सुबह तडके ही मैं सेठ के घर गया और जाकर उससे पत्रोवाली सारी बात बतायी। सीता की मां का भी यही ख्याल था कि उसके पीछे ऐसी ही कोई बात थी क्योकि प्रत्यक्ष और कोई ऐसी बात नही थी जिसके कारण सीता ने ऐसा किया हो।

थोडी देर ही मैं वहां रहा। उसके बाद मैं सेठ के साथ पुलिस थाने आ गया। सेठ के आफिस के तथा मुहल्ले के भी कुछ लोग आ गये थे।

एक बार फिर हम लोगो ने कोशिश की कि लाश का पोस्टमार्टम न हो। परन्तु पुलिस अधिकारी इस बात के लिए राजी नही हुए। पता नहीं किसीने उन्हें क्या भडका दिया था। खैर, वहाँ से हम लोग अस्पताल आ गये जहाँ लाश रखी थी और जहाॅ पोस्टमार्टम होना था।

दोपहर के कोई दो-ढाई बजे पोस्टमार्टम शुरू हुआ और चार बजे के लगभग डाक्टर ने पुलिस अधिकारियो को रिपोर्ट भेज दी। इसके बाद फिर सेठ को पुलिस थाने बुलाया गया। वहाॅ दारोगा ने उससे कहा कि उसे दफा तीन सौ दो मे कैद किया जायेगा क्योकि उसने स्वय लडकी की हत्या की थी'। पोस्टमार्टम की रिपोर्ट के अनुसार लड़की गर्भवती थी। कोई चार महीने का गर्भ उसके था। और चूंकि उसका विवाह नहीं हुआ था, इसलिए घरवालो ने जान-बूझकर उसकी हत्या कर दी थी। सेठ ने यह सुना तो उसे चक्कर-सा आ गया। वह कुछ बोला नही और चुपचाप वही कुर्सी पर बैठ गया। थानेदार ने कान्स्टेबल से कहा, इन्हे ले जाकर हवालात में बन्द कर दो।

मुहल्ले के कुछ और लोग भी वहाँ थे, मैं भी था। मैंने यह सुना तो मेरा खून खौल उठा। फिर भी मैने सब्र से काम लिया और वहाँ मौजूद एक सब-इन्सपेक्टर को किनारे ले जाकर बात की। पाँच हजार से बात शुरू करके वह ढाई हजार पर आया कि यदि ढाई हज़ार रुपये उन्हे दे दिये जाएँ तो केस हुश-अप कर दिया जायेगा।

मैं दुबारा सेठ के पास गया जो बावजूद दारोगा द्वारा कान्स्टेबुल को यह आदेश दिये जाने के कि वह उसे हवालात मे बन्द कर दे अब भी उसी कुर्सी पर बैठा था और उसे सारी बात बतायी। सेठ पहले कुछ देर तो कुछ बोला ही नही। तब उसने बताया कि उसके पास सौ रुपये भी नही होगे।

—आप चिन्ता मत कीजिये, मैंने कहा, मैं अभी रुपयो का प्रबन्ध करके लाता हूँ।

सेठ ने कोई उत्तर नहीं दिया। मैंने तब तक सारी बात सोच ली थी। बिना उसके उत्तर की प्रतीक्षा किये मैं वहाँ से छुन्नू बाबू के पास आ गया और उनसे कहा कि वह मुझे ढाई हज़ार रुपया उधार दे दे।

छुन्नू बाबू को तब तक सेठ की लड़की की आत्महत्या के बारे मे पता चल गया था, उन्होने मुझसे पूरी बात जाननी चाही। मैने उन्हें केवल यह बताया कि पुलिसवाले इतने रुपये माँग रहे हैं, अन्यथा वह सेठ और उसके परिवार पर यह इल्ज़ाम लगा देगे कि उन्होने जान-बूझकर अपनी लडकी की हत्या की है।

छुन्नू बाबू ने पूरी बात समझने की कोशिश की तब बोले—मेरे पास रुपये होते तो मै जरूर दे देता, परन्तु तुम जानते हो मेरा बहुत बडा परिवार है और इस क्लब से कोई खास आमदनी भी नही होती। चार-पाँच हज़ार रुपये मेरे पास थे जरूर। परन्तु अभी पिछले दिनो मेरे चाचा आये थे, गाव में उनका घर गिर गया पिछली बरसात मे सो उन्होने उधार ले लिये।

—जो कसम चाहो तुम ले लो मेरे पास एक धेला नही। उन्होने कहा।

—आप चाहते हैं, आपका यह क्लब चले या नही। मैंने कहा।

वह चौक पडे। —क्या मतलब? उन्होने कहा।

—मतलब यह कि आप श्रीवास्तव को बुलाकर शार्पिंग करवाते हैं और सबका माल उतारते है और आपके पास ढाई हज़ार रुपये नही है?

—क्या कह रहे हो। उन्होने आश्चर्य व्यक्त किया।

—अभी तो आप ही से कह रहा हूँ और यदि आपने रुपयो का प्रबन्ध न किया तुरन्त तो सभी से मुझे कहना पडेगा और यदि साबित करवाना चाहते हैं कि श्रीवास्तव शार्पर है तो सबित भी कर दूंगा।

छुन्नू बाबू थोड़ा असमजस मे पड गये। एक क्षण चुप रहे। तब बोले—यह सब तुम जो कह रहे हो सो तो मैं कुछ नही जानता। परन्तु

जहाँ तक रुपयो की बात है सो तुम मुझे थोड़ा वक्त दो मैं कोशिश करता हूँ, शायद कही मिल जाये।

—मुझ रुपयों से ही मतलब है। मैंने कहा, और सब बातों का मेरे लिए कोई महत्व नही है।

—कब तक चाहिए तुमको रुपये ?

—तुरन्त।

—आध घटे का टाइम दो मुझे, मैं देखता हूँ कहीं से कुछ इन्तजाम हो जाय तो।

—देखना नही, मैंने कहा, क्लब चलाना है तो तुरन्त इन्तजाम कर दीजिये। उधार चाहता हूँ, खैरात नही।

—अच्छा भाई, कह तो रहा हूँ कही से इन्तजाम करता हूँ।

—मैं चल रहा हूँ। मैंने कहा, आप रुपये लेकर चौक थाने आ आइए। मैं वही मिलूंगा।

जैसा कि मेरा अनुमान था छुन्नू बाबू आध घण्टे के अन्दर ही रुपये लेकर चौक थाने पर आ गये। परन्तु साथ में प्रोनोट का एक फार्म भी ले आये। कहने लगे रुपये मै एक आदमी से कर्ज लेकर आया हूं। इस प्रोनोट पर अपने और सेठ के दस्तखत करा दो।

—सिर्फ मेरे दस्तखत से काम न चलेगा ? मैंने कहा।

—वह मानेगा नही। दो मे से कम से कम एक सरकारी मुलाजिम होना चाहिए।

—सेठ भी सरकारी मुलाजिम नही है।

—कही तो नौकरी करता है।

मैंने उससे ज्यादा बहस नही की। प्रोनोट लेकर मैंने उसपर जहाँ-जहाँ छुन्नू बाबू ने बताया दस्तखत कर दिये। सेठ के भी करा दिये और रुपये पुलिसवालो को देकर हम लोग वापस अस्पताल आ गये। वहाँ से सीता की लाश लेकर हम घर पर चले आये।

कोई सात-आठ बजे लाश को फूक-फाककर हम लोग वापस लौटे। घर आकर मैंने माँ से बीस रुपये लिये जो उन्होने बिना कारण पूछे मुझे दे दिये। वह रुपये ले जाकर मैने शराब पी और घर लौटकर बिस्तर पर लेट गया बिना खाना खाये। माँ उस समय तक जाग रही थी। परन्तु उन्होने मुझसे कुछ भी कहा नही और जब मै अपने बिस्तर पर लेट गया तो वह भी चुपचाप अपनी चारपाई पर चली गयी। मेरा वह पहला दिन था जब माँ ने मुझसे खाने के लिए नही कहा।

इस घटना के बाद तीन-चार दिन तक सेठ घर से बाहर नहीं निकला। मै जब भी उसके घर गया मैने उसे चुपचाप अकेले बैठे या लेटे पाया। वैसे वह अपना नित्यप्रति का सब कार्य करता, नहाता-धोता, शेव करता, खाना खाता, चाय पीता—परन्तु बोलता किसीसे कुछ भी नही। उसके आफिस के भी कुछ लोग उससे घर पर मिलने आये। उनके सामने भी वह शायद ही कुछ बोला हो।

चौथे या पाँचवे दिन वह सुबह नहा-धोकर खाना खाकर आफिस गया। घर मे पत्नी-बच्चो ने समझा, चलो अब धीरे-धीरे सब ठीक हो जाएगा। परन्तु रात देर तक वह लौटकर नही आया। वैसे घरवाले शायद चिन्ता न भी करते इस ख्याल से कि वह छुन्नू बाबू के घर बैठा होगा। परन्तु कोई साढे सात बजे मै उसके घर चला गया और जब मैने बतलाया कि वह छुन्नू बाबू के यहाँ नही हैं तो वे लोग कुछ थोडा-सा चिन्तित हुए। तभी एक पुलिस कान्स्टेबुल उसके घर का पता पूछते हुए वहाँ पहुँचा। उसने कुण्डी खटखटायी तो मैने ही जाकर दरवाजा खोला। —रामकृष्ण सेठ का मकान यही है? उसने पूछा।

—जी हाँ। मैने कहा।

—आप कौन है? उनके लडके?

—नही, मै उनका दोस्त हूँ।

—क्या आप साथ चलेंगे?

—क्यो क्या बात है?

एक आदमी की लाश मिली है आलमबाग मे। रेल से कट गया है। उसके पास से जो कागज़ आदि मिले हैं उससे पता लगा है कि उसका नाम रामकृष्ण सेठ है। मैं यूनिन कार्बाइड दफ्तर गया था। वहाँ से घर पता चला। आप चलकर लाश पहचान लेगे क्या?

मेरी समझ मे नही आया, मै क्या कहूं। परन्तु तभी मैंने गौर किया कि सेठ की पत्नी और बच्चे भी नीचे आ गये थे और मेरे पीछे ही सीढियों पर खडे थे। शायद वे लोग बात ठीक से समझे नही थे। —क्या है? सेठ की पत्नी ने पुलिस कान्स्टेबुल से पूछा तो उसने अपनी बात दुहरायी।

सेठ की पत्नी वही खडे-खडे गिर पडी और बेहोश हो गयी। उसका माथा सीढियो से टकराया और उसके खून बहने लगा। बच्चे यह सब देखकर ज़ोर-ज़ोर से रोने लगे। अडोस-पडोस के लोग भी आ गये।

कुछ लोग सेठ की पत्नी को उठाकर अन्दर ले गये और उसे बिस्तर पर लिटाकर उसके मुँह पर पानी के छीटे मारने लगे।

—जरूरत पड़े तो डाक्टर को बुला लीजिएगा। मैने पडोस के एक व्यक्ति से कहा, जिसके सेठ के घर से अच्छे सम्बन्ध थे और मै स्वय पुलिस कान्स्टेबुल के साथ चल दिया। दो-तीन लोग और भी हमारे साथ हो लिये। सेठ का बडा लडका भी साथ था।

लाश घटनास्थल पर ही पडी थी। काफी तमाशबीन वहाँ जमा थे। दो-एक कान्स्टेबुल भी थे। सिर धड से बिलकुल अलग हो गया था। आखे खुली थी जिसके कारण चेहरा बहुत ही बीभत्स लग रहा था। एक हाथ भी कुहनी के ऊपर से कट गया था। जो लोग वहाँ जमा थे तथा जो साथ आये थे उनमे से भी ज्यादातर लोगो का यही विचार था कि सेठ ने आत्महत्या की थी। जो भी हो पुलिसवाला ने वहाँ जमा हुए लोगो से पचनामा लिखवाया और लाश हम लोगो के हवाले कर दी।

बड़ी मुश्किल से एक रिक्शेवाला लाश को लाने के लिए तैयार हुआ। उसमे भी हम लोगो को बड़ी कठिनाई हुई क्योकि कपड़ा या चादर हम लोग अपने साथ नही लाये थे। और इस तरह की लाश को जिसका सिर और एक हाथ अलग हो रिक्शे पर रखकर लाना आसान काम नही था। मजबूरी में कटा हुआ हाथ और सिर रिक्शे के नीचे अपने पैरो के पास रखकर धड लेकर मैं रिक्शे पर बैठ गया। इत्तफाक से एक सज्जन स्कूटर से आये थे। उनके स्कूटर की डिक्की मे कोई गदा कपडा था, उससे ही मैंने सिर और हाथ को किसी तरह ढक लिया।

लाश को लेकर हम लोग घर पहुंचे तब तक सेठ की पत्नी को होश आ चुका था, परन्तु उसके मस्तिष्क पर कुछ इतना गहरा असर पडा था कि वह लाश देखकर बिलकुल भी नही रोयी। बल्कि खाली-खाली आँखो से सबको घूरती रही। लाश को ज़मीन पर लिटाकर हमने उसे कपडे से ढक दिया। मेरे सारे कपड़े खून से भर गये थे। घर आकर मैने कपड़े बदले।

माँ मेरे कपडो मे खून लगा हुआ देखकर अचानक घबरा गयी, परन्तु जब उन्हे पता चला कि मैं ठीक-ठाक हूं तो उन्हे सन्तोष हुआ। सेठ के बारे मे उन्हे पता नही था। मैने ही बताया। सुनकर वह बहुत अफसोस करने लगी कि उसकी पत्नी पर क्या बीती होगी। अभी बेचारी की जवान लड़की मरी है और आज आदमी भी नही रहा। वह मेरे साथ सेठ के यहाँ चलने के लिए ज़िद करने लगी तो मै उन्हे भी लेता गया।

सेठ की पत्नी की हालत अब तक बहुत ही खराब हो गयी थी। वह रो नही रही थी बल्कि अपने घर मे जमा तमाम लोगो को देखकर बार-बार यही कह रही थी कि आप लोग यहाँ क्यो आये है, यह सो रहे है। इनको सोने दीजिए। आप लोग घर जाइये। बच्चे भी बजाये रोने के घबराये हुए लोगो को देख रहे थे।

मैंने सेठ के बड़े लडके से पूछा कि उसके कोई रिश्तेदार आदि शहर मे हो तो उन्हे बुलवा लिया जाये। परन्तु उसने बताया कि उसके कोई भी रिश्तेदार यहाँ नही थे। सभी बाहर थे। उससे मैने बाहर के रिश्तेदारो का, उसके चाचा, नाना आदि का पता लिया और उन्हे तार कर दिया।

सबसे बडी समस्या सेठ की पत्नी की थी। सभी लोग यह सोच रहे थे कि यदि इसकी यही हालत रही तो बहुत जल्द यह पागल हो जाएगी। उसका रोना बहुत ज़रूरी था। इसके लिए एक सज्जन ने सुझाव दिया कि लाश को ढककर न रखा जाये बल्कि उसे खोल दिया जाये। उसे देखकर शायद उसपर कुछ असर पडे। ऐसा ही किया गया। असर भी वही हुआ जिसकी आशा थी। सेठ की पत्नी कुछ देर उसे घूरके देखती रही तब चिंघाडकर रो पड़ी और रोते-रोते बेहोश हो गयी। दुबारा उसके चेहरे पर पानी के छींटे मारे गये और कुछ ही देर बाद उसे होश आ गया। इस बार होश आने पर वह ठीक थी और फूट-फूटकर रोती रही। बच्चे भी रोने लगे थे। लाश को हमने दुबारा ढक दिया।

काफी लोग रात-भर वहाँ बने रहे। दूसरे दिन कोई ग्यारह बजे सेठ की पत्नी के भाई और पिता भी आ गये। माँ उसकी जीवित नही थी। सेठ के भाई आदि तथा उसके आफिस के भी काफी लोग आ गये। कोई तीन बजे दाह-सस्कार हुआ। वहाँ से लौटकर सब लोग अपने-अपने घर चले गये। मै भी।

दूसरे दिन पता चला कि सेठ की पत्नी के पिता उसे तथा सारे बच्चो को अपने साथ ले जाने की योजना बना रहे थे। यह ठीक ही था, क्योकि यहाँ उनकी देख-रेख करनेवाला कोई था नहीं।

इसके दूसरे या तीसरे दिन छुन्नू बाबू मेरे घर आये। उन्हे अपने घर देखकर कुछ आश्चर्य हुआ मुझे। आखिर वह क्यो आये मेरे घर! पहली बार था यह। तभी उन्होने अपने आने का अभिप्राय बताया। पहले

तो उन्होने सेठ की मृत्यु पर शोक प्रकट किया। तब बोले—सुना है उसके बच्चे वगैरह सब ननिहाल जा रहे हैं।

—हाँ। मैने उत्तर दिया।

—फण्ड वगैरह सब मिल गया सेठ का?

—पता नही। मिल ही जाएगा।

—देखो गलत मत समझना मुझको। तुम्हारी ही भलाई के लिए कह रहा हूँ। तुम उन लोगो से रुपयेवाली बात बता दो। फण्ड वगैरह से पेमेण्ट हो जायेगा अभी। नही तो बाद में मुश्किल पडेगी।

मुझे उसके चेहरे को देखकर अपार घृणा हुई। कम से कम पन्द्रह-बीस हजार रुपये सेठ उसके यहाँ जुए मे हार चुका था जो निश्चय ही उससे बेइमानी से जीता गया था और मेरा विश्वास था, उसमे से कम से कम आधा छुन्नू बाबू को मिला होगा। और ढाई हज़ार के लिए वह यह बात कर रहा था।

—सेठ मर गया है, मगर मै तो अभी ज़िन्दा हूँ। मैने कहा।

उसने मेरे कधे पर हाथ रखा। —इसीलिए तो कहा कि तुम्हारी भलाई के लिए ही कह रहा हूँ। तुम क्यों भरो उसका रुपया? और फिर भाई बुरा मत मानना। सेठ तो गवर्नमेण्ट सेर्वेट था। तुमसे कोई क्या ले लेगा।

मेरी तबीयत आयी कि एक उल्टा हाथ उसके रसीद करूँ। परन्तु मैंने कहा—देखो जिस मकान मे बैठे हो, उसकी कीमत कम से कम तीस हज़ार है और इससे मेरा एक तिहाई हिस्सा है।

—नही नही, भाई तुम फिर गलत समझे मुझे। मै तो सिर्फ यह सोच रहा था कि तुम क्यो खामखाह रुपये भरो। आखिर सेठ को कुछ पन्द्रह-बीस हज़ार फण्ड मिलेगा ही। इन्श्यूरेन्स भी होगा दस-बीस हज़ार का कुछ। उससे आसानी से पैसा मिल सकता है। और फिर जितने दिन पडा रहेगा सूद ही बढेगा। और हाॅ, अगर तुम बीच मे न पडना चाहो तो मै, तुम कहो तो, सेठ की बीबी को नोटिस भिजवा दूं।

मैंने कुछ कहना चाहा, परन्तु उसने हाथ उठाकर मुझे रोक दिया। बोला—देखो भाई, गलत मत समझना मुझको। तुम जानते हो रुपया मेरा तो है नही। मैने भी दूसरे से लेकर दिया है। बल्कि प्रोनोट भी उसीके पास है।

—देखिये छुन्नू बाबू, मैंने कहा, आपका रुपया आपको मिल जायेगा। और जितने दिन बाद मिलेगा उतने दिन का सूद मिलेगा आपको। मैं दूंगा।

छुन्नू बाबू उठकर खड़े हो गये। —भाई, मुझको क्या करना। मैं तो तुम्हारी भलाई के लिए ही कह रहा था। और मै जानता हूं, बाद मे तुम पछताओगे। ज़िदगी का तजुर्बा भी कुछ होता है। और वह घर से बाहर निकल गये।

दो-चार दिनो बाद ही बड़े भाई कानपुर से आये माँ को अपने साथ ले जाने के लिए। इस बीच छोटे भाई को कही कोई नौकरी मिल गयी थी। अलमोड़ा मे किसी सरकारी सस्थान मे। वह वहाँ चले गये थे। बडे भाई ने मुझसे कहा कि मै भी उनके साथ चला चलूं। आखिर यहाँ अकेले रहकर क्या करूंगा। माँ ने भी यही कहा। और अत में यही तय भी हुआ। अतः हम लोग यानी माँ, बड़े भाई के साथ कानपुर आ गये। घर पर ताला पड गया।

कानपुर मुझे कतई अच्छा नही लगा। शायद इसलिए क्योकि वहाँ के बारे मे मैं कुछ नही जानता था। कोई सात-आठ दिन मैं वहाँ रहा। दिन-भर इधर-उधर भटकता रहता, दो-एक दिन माँ को सबेरे गगा-स्नान कराने ले गया। उसके बाद बोर होने लगा। और बिना किसीकी मर्ज़ी के माँ से घर की कुजी लेकर वापस लखनऊ आ गया।

लखनऊ आकर फिर मेरी वही दिनचर्या हो गयी। दिन-भर इधर-उधर आवारागर्दी करता। ज्यादा समय खलील के साथ बीतता। खलील ने इस बीच एक छोटी-मोटी दर्ज़ी की दूकान कर ली थी। वह एक दर्ज़ी की ही सन्तान था और कपडे सिलने का काम उसे बचपन से ही

आता था। प्राय: मैं दिन-भर उसकी दुकान पर बैठा उसे कपड़े काटते-सिलते देखता रहता। बल्कि जब कभी उसकी दूकान पर उसके और सहायक न होते तो मैं ग्राहको की नाप आदि डायरी मे लिख देता। शाम को सात के आस-पास मै वहाँ से छून्नू बाबू के यहाँ आ जाता। कोई दो-तीन घण्टे वहाँ रहता और श्रीवास्तव को शार्पिग करते देखता रहता। तब प्राय. छुन्नू बाबू से पाँच-दस रुपये उधार लेकर चला आता। उन्ही रुपयों से शाम का खाना खाता। कभी कोई साथी मिल जाता तो उसके साथ थोडी-सी शराब भी लेता और तब घर आकर सो रहता। हाँ, सुबह के कार्यक्रम मे कुछ तबदीली हो गयी थी। सुबह मै अपना खाना स्वय पकाता। इसके लिए भाई ने थोडे रुपये मुझे दिये थे जिसका राशन-पानी लाकर मैने घर मे रख दिया था। थोडा ईंधन, पत्थर का कोयला और लकडी आदि भी लाकर रख दिया था। चाय का पैकेट, कण्डेन्स्ड मिल्क का एक डिब्बा और शक्कर भी लाकर रख ली थी। प्राय: सुबह जल्दी ही उठ जाता। अंगीठी सुलगाता, चाय बनाता, तब हाथ-मुंह धोकर खाना बनाता। कभी पराठा-सब्जी तो कभी सिर्फ खिचडी ही। और फिर नहा-धोकर खाना खाकर मकान मे ताला डालकर बाहर निकल जाता।

छून्नू बाबू से जब से मैने सेठ के लिए रुपये उधार माँगते समय श्रीवास्तव द्वारा शार्पिगवाली बात कही थी तब से मैने गौर किया था, वह कुछ मुझसे घबराने लगे थे और शाम को जब भी मैं उनसे दस-पाच रुपये माँगता वह चुपचाप मुझे देते। परन्तु कुछ ही दिनो बाद उन्हे रुपयोवाली बात अखरने लगी और वह मुझे अक्सर समझाते कि मै शरीफ घर का लडका हूं, हाई स्कूल तक पढा हूं खामख्वाह क्यो वक्त गँवाता हूँ, कही कोई नौकरी वगैरह खोजूं। दो-एक बार मेरे रुपये माँगने पर उन्होने बहाना भी बनाया कि आजकल बहुत तगी है, घर मे बीमारी चल रही है आदि। मगर रुपये उन्होने दे हमेशा दिये, क्योकि मेरे सामने ही वह हर बार बोर्ड से एक रुपया निकालकर एक डिब्बे मे डालते थे।

और इस प्रकार कम से कम सौ डेढ़ सौ रुपये रोज वह पैदा करते थे। हालांकि उनका यह भी कहना था कि इसमे से आधे से ज्यादा रुपये उन्हे पुलिसवालो को देने पडते थे। जो भी हो, खासी कमायी वह क्लब द्वारा करते थे।

दो-तीन महीने तक इस तरह चला। तब उन्हे मेरा उनके यहाँ जाना अखरने लगा। इस बीच उन्होने मुझसे अपने ढाई हजार रुपयो का तकाज़ा भी किया। शायद उन्होने सोचा हो कि रुपये न दे सकने की स्थिति मे मैं स्वय उनसे मुँह चुराना शुरू कर दूँगा। परन्तु जब मैंने ऐसा नही किया तो उन्होने मुझे अपने घर आने से मना करना शुरू किया। उन्होने बहाना किया कि वहाँ आनेवाले लोग एतराज करते हैं।

—कौन एतराज करता है ? मैंने पूछा, मुझे बताइये, मै उससे बात करूँगा।

परन्तु उन्होने किसी खास व्यक्ति का नाम नही बताया। बोले—सभी लोग एतराज करते हैं। फिर तुम फालतू बैठकर करते भी क्या हो ? इस बीच कुछ और काम करो तो दो-चार रुपये ही पैदा करो। चाहो तो कोई दूकान ही खोज लो छोटी-मोटी। पान-सिगरेट की ही सही। सौ-डेढ सौ रुपया जो लगे, मै दे दूँगा।

तभी एक दिन जब उनके यहाँ गया तो राधे—उनके नौकर ने दरवाजा खोलने से इनकार कर दिया। अन्दर ही से उसने कहा कि छुन्नू बाबू हैं नही, बाहर गये हैं और बिना उनकी आज्ञा के मै दरवाजा नही खोलूँगा। जो भी हो। मै चुपचाप लौट आया। परन्तु मुझे बहुत बुरा लगा। काफी देर तक मै मकान के बाहर सड़क पर खड़ा सोचता रहा कि क्या मैं पुलिस मे जाकर उसकी रिपोर्ट करूँ कि वह अपने घर पर जुआ खिलवाता है। परन्तु फिर मैने सोचा कि जब वह पुलिसवालो को रुपया खिलाता है तो शायद ही वे लोग कुछ करे।

इसीके दो-तीन दिन बाद मुझे कोर्ट से नोटिस मिली उन ढाई हज़ार रुपयो के बारे मे जो मैने छुन्नू बाबू से लिये थे। कोई दस-पन्द्रह दिनो बाद कोर्ट मे पेशी थी। मुझे बहुत गुस्सा आया। उस बात पर नही कि मुझे नोटिस मिली थी। बल्कि इस बात पर कि दावा ढाई हज़ार की जगह पाँच हज़ार कुछ का किया गया था। मैंने और सेठ ने सादे प्रोनोट पर दस्तखत किये थे। उसने मनमानी रकम उसमें भर ली थी।

उसी दिन शाम को मै उसके घर गया। सीढी चढकर मैंने कुण्डी खटखटायी तो राधे दरवाज़े पर आया। उसने पूछा—कौन? तो मैंने अपना नाम बताया परन्तु राधे ने दरवाज़ा नही खोला। वह वापस लौट गया। तभी कुछ क्षणो बाद छुन्नू बाबू स्वय आये। उन्होने दरवाज़ा खोला और वही खडे-खडे मुझसे बात करने लगे। मैंने उन्हे नोटिस दिखाई। —यह क्या है? मैंने कहा।

उन्होने नोटिस हाथ मे लेकर देखा। तब बोले—आखिर कोई कब तक इन्तज़ार करेगा। उसने दो-चार बार मुझसे कहा, मैने तुमको बताया ही था। आखिर जब मैं उसे कोई ठीक जवाब नही दे सका तो उसने दावा कर दिया होगा।

—उसने किसने?

—जिसने रुपया दिया।

—देखिये, रुपया मैने आपसे लिया था। मैंने कहा, मैं किसी और को नही जानता और यह भी आप किसी और को समझाइयेगा कि रुपया आपका नही है।

—अच्छा मेरा ही था। तो? मै छोड दूँ रुपया अपना?

—छोड क्यो दीजिये? मगर यह पॉच हज़ार का दावा क्यो किया गया?

—मुझे नही मालूम, कोर्ट मे जाकर कहना।

मै कुछ क्षण चुप रहा। तब मैने कहा—देखिये, मै चाहूँ तो आपका यह क्लब एक दिन मे बन्द हो जाए।

—जाओ बन्द करवा दो। उन्होने बहुत ही सहजता से कहा।
—और कुछ ?

जी मे तो आया कि एक झापड़ मै उनके दूं। परन्तु राधे बिल्कुल उनके पीछे खडा था। वैसे भी उस समय उनके घर पर उनसे इस तरह की हरकत करना मेरी बेवकूफी ही होती। मै चुपचाप वापस चला आया। मेरे मुड़ते ही उन्होने दरवाज़ा बन्द कर लिया।

मैंने अपने दो-चार मित्रो से इस सिलसिले मे बात की, परन्तु किसीने कोई ठीक राय नही दी। हाँ, यह सभी ने कहा कि जिस दिन कहो, छुन्नू बाबू के भरी बाज़ार में दस जूते लगा दूं। दो-एक ने तो कहा कि कहो तो साले के हाथ-पॉव तुड़वाकर अस्पताल भिजवा दूं। परन्तु मैने सभी लोगो को मना कर दिया। हॉ, यह निर्णय जरूर मैंने लिया कि इसका क्लब बन्द करवाके रहूँगा। इसके लिए मै वहॉ आनेवाले लोगो से अलग-अलग मिला और उन्हे मैने बताया कि श्रीवास्तव नाम का व्यक्ति जो वहॉ खेलता है वह शार्पर है, पत्ते लगाता है और या तो स्वय जीतता है या प्रकाश बाबू को जितवाता है। परन्तु या तो छुन्नू बाबू ने पहले से ही कुछ पेशबन्दी कर ली थी और लोगो को मेरे खिलाफ भडका रखा था या फिर कुछ दिनो के लिए श्रीवास्तव ने शार्पिग बन्द कर दी हो, जो भी हो, मेरी बात का लोगो पर ज्यादा असर नही पडा।

तभी कोर्ट की तारीख आ गयी। मै गया नही। जो होगा देखा जाएगा—मैने सोचा। बाद मे मुझे पता चला कि मेरे खिलाफ साढे छः हज़ार की डिग्री हो गयी थी। ठीक है, मेरे पास क्या धरा है जो कोई मुझसे लेगा, मैने सोचा।

इस बीच मै छुन्नू बाबू के यहॉ खेलनेवाले लोगों से मिलता भी रहा। धीरे-धीरे मुझे लगा कि मेरी बातो पर लोगो को विश्वास आने लगा था, साथ ही मैने यह भी निर्णय लिया कि मै स्वय एक क्लब खोलूंगा। इसके लिए मैंने उचित जानकारी भी हासिल की कि क्लब का रजिस्ट्रेशन आदि कैसे होता है। दो-एक रजिस्टर्ड क्लबो का संविधान लेकर मैंने उसी ढर्रे

पर एक संविधान भी तैयार किया। क्लब का नाम रखा 'मनोरजन क्लब'। छुन्नू बाबू के क्लब का नाम था 'चेतन क्लब'। चेतन शायद उनके लड़के का नाम था। इस सब काम मे मुझे दो-तीन महीने लग गये।

तभी एक दिन मेरे ही मुहल्ले मे रहनेवाले बाबू बद्रीनाथ ने मुझे बुलवाया। वह कचहरी में पेशकार थे और मेरे पिता के मित्रो मे से थे। मै उनसे मिलने गया तो उन्होने मुझे बताया कि छुन्नू ने कोर्ट से मकान का मेरा हिस्सा अपने रुपयो की डिगरी के खिलाफ अटैच करा लिया है। अगर वह चाहे, बन्द्रीनाथ जी ने मुझे बताया, तो उतना हिस्सा नीलाम करवा सकते है।

मेरी समझ मे नही आया कि मुझे क्या करना चाहिए। तभी बद्रीनाथ जी ने स्वय मुझे तरकीब सुझायी। उन्होने कहा—तुम अपने बड़े भाई से बात करो और साल-छ: महीने पहले किसी तारीख मे अपना हिस्सा उनके नाम बेच दो। तब कुछ न हो सकेगा। और बडे भाई से कहो कि उस कागज को लेकर कचहरी मे अटैचमेन्ट के खिलाफ दरखास्त लगा दे। उनको मेरे पास भेजना। मै सब समझा दूंगा।

मै बद्रीनाथ जी को धन्यवाद देकर चला आया। परन्तु मै समझ नही रहा था कि मै बडे भाई से कैसे क्या बात करूँ। तभी एक दिन बडे भाई स्वय अपने किसी काम से लखनऊ आ गये। रात वे घर मे ही रहे। छत पर मेरी और उनकी चारपाई अगल-बगल ही पडी थी, तभी डरते-डरते मैने उनको सारी बात बतायी। उनसे यह भी कहा कि बद्रीनाथ जी ने उन्हे बुलवाया है। वह सब ठीक कर देंगे।

बडे भाई मुझपर काफी बिगडे-बिगडाये, मगर सुबह बद्रीनाथ जी से मिलने चले गये। उस दिन तो खैर उनसे मिलकर वह वापस लौट गये, मगर दो-एक दिन बाद वह दुबारा आये और बद्रीनाथ जी के ज़रिये किसी वकील से मिल-मिलाकर उन्होने काफी पैसे खर्च करके छ:-सात महीने पहले के कोर्ट स्टैम्प पेपर खरीदे। उसपर मुझसे मकान का अपना हिस्सा

उनके नाम आठ हज़ार मे बेचने की रसीद लिखवायी और कोर्ट मे छुन्नू बाबू के पक्ष मे हुए अटैचमेन्ट के खिलाफ दरखास्त दे दी।

दूसरे ही दिन कोर्ट से फैसला हो गया और वह अटचमेन्ट आर्डर रद्द हो गया।

चलते समय बड़े भाई ने मुझे अपने साथ कानपुर चलने के लिए कहा। परन्तु मैने मना कर दिया।

—तुम रहोगे तो यही सब करोगे। उन्होने कहा।

मैंने उन्हे वादा किया कि अब मै ऐसा कोई काम नही करूँगा।

कोर्ट अटैचमेन्ट रद्द हो जाने से छुन्नू बाबू मुझसे काफी खीझ गये थे। इस बीच मैं जान-बूझकर दो-एक बार उनके घर भी गया। महज उनको चिढाने के लिए। वह मुझसे कुछ कह भी नही सके थे, क्योकि रुपयो का दावा उन्होने अपने नाम से नही किया था। या तो किसी फर्जी नाम से किया था। या फिर कोई और व्यक्ति रहा होगा जिसकी सहायता उन्होने ली होगी।

मैंने अपना क्लब भी रजिस्टर करवा लिया था। यह बात भी उन्हे पता लग गयी थी और उस बात से वह और ज्यादा खीझे हुए थे। क्योकि उन्हे यह भी पता चल गया था कि मैं उनके यहाँ आनेवाले लोगो से कहने लगा था कि वैसे उनकी मर्जी, परन्तु यदि वे चाहे तो जल्दी ही मेरे क्लब मे आकर खेल सकते हैं। यह बात छुन्नू बाबू को कतई ग्राह्य नही थी। अत उन्होने मुझे रास्ते से हटाना चाहा और उसके लिए उन्होने पुलिस से मदद ली और मुझे दो-एक झूठे चोरी-बदमाशी के केसो मे फँसाना चाहा। दो बार ऐसा हुआ कि पुलिस ने जिस व्यक्ति को पकडा उससे यह कहलवा दिया मै उसके साथ था। मुझे परेशानी जरूर हुई, मगर मैं जमानत पर छूट गया। इसके लिए मैं खलील का आभारी हूँ जिसने भाग-दौड़कर मेरी जमानत करवायी।

इस बीच मेरे क्लब का साइनबोर्ड बनकर आ गया था। मैंने उसे अपने मकान मे बाहर लगवाया। गली के नुक्कड पर भी एक छोटा साइनबोर्ड तीर का निशान बना हुआ लगवाया और जिस दिन उसका उद्घाटन किया उस दिन अपने मित्रो के अलावा छुन्नू बाबू और उनके यहाँ आनेवाले लोगो को भी बुलवाया। सबको लड्डू आदि बाँटे। छुन्नू बाबू भी आये। उन्होने भी लड्डू लिये। मुझे बधाई भी दी। परन्तु मैं जानता था कि मन ही मन वह यही चाहते होगे कि किसी तरह मै इस धरती से उठ जाऊँ तो अच्छा हो।

यह सब मैने बिना बडे भाई से आज्ञा लिये या उन्हे बताए किया था। मै जानता था कि वह इसके लिए कभी राजी न होगे। और मैं इस बात पर भी दृढ था कि मै क्लब चलाकर ही रहूँगा।

चार-छ दिन तो मेरे मित्रो के अलावा मेरे क्लब मे कोई नहीं आया। तभी धीरे-धीरे छुन्नू बाबू के यहाँ के लोग भी आने लगे। जबकि छुन्नू बाबू के यहाँ का कायदा था कि वह फी बोर्ड एक रुपया निकालते। मैने नियम बनाया था कि लोगों को केवल मेम्बरशिप फार्म भरते समय दस रुपये देने होगे और यदि वे रात नौ बजे के बाद बैठेगे तो फी व्यक्ति दो रुपये देने होगे। काउण्टरो का प्रबन्ध भी मैने कर लिया था ताकि प्रत्यक्ष रुपये बाहर न फैले। यह सब काम मैने खलील की सहायता से किया जो मेरे क्लब मे आधे का भागीदार भी था।

यह सब देखकर छुन्नू बाबू ने अपना अतिम अस्त्र प्रयोग किया जिसकी काट मेरे पास नही थी। उन्होने अपने रुपयो की डिगरी का भुगतान न होने की स्थिति मे कोर्ट से मेरे नाम वारेण्ट आफ अरेस्ट निकलवा दिया और अपने खर्चे पर मुझे जेल भिजवा दिया। कानून में शायद कोई धारा ऐसी है कि यदि कोई आदमी किसीका रुपया चाहता हो तो चाहनेवाला कर्ज लेनेवाले को अपने खर्चे पर जेल भिजवा सकता है। साथ ही उन्होने एक काम और किया कि पुलिस को काफी रुपया वगैरह

खिलवाकर खलील को भी किसी केस में फँसवाकर बन्द करवा दिया। और वह भी इस शहर मे नही, फैजाबाद में।

मेरे जेल जाने के कोई तीसरे या चौथे दिन बडे भाई मुझसे जेल में मिलने आये। उन्हे कैसे पता चला मै कह नही सकता। लेकिन मेरा ख्याल है कि वह कानपुर से सीधे आये थे। क्योकि यदि घर होकर आते तो क्लब के बारे मे ज़रूर पूछते। परन्तु उन्होने उसके बारे मे कोई बात नहीं की। हाँ, यह जरूर पूछा कि घर मे ताला पड़ा है या नही। —हाँ, मैने कहा और कुजी निकालकर उन्हे दे दी। उन्होने मुझसे यह भी पूछा था कि क्या वह छुन्नू बाबू से बात करे। मेरे पास रुपया तो नही है, उन्होने कहा, लेकिन यदि छुन्नू बाबू राजी हो जाये तो थोडा-थोडा करके मै उन्हे हर महीने देता रहूँगा। परन्तु मैने उन्हे मना कर दिया। मै जानता था कि जेल मे मुझे रखने का खर्च छुन्नू बाबू को देना पडता है और आखिर कब तक वह देते रहेगे। वैसे भी कैद की कोई मियाद तो होगी ही। आखिर इस जुर्म मे मुझे आजीवन कारावास तो हो नही सकता था।

चलते समय बडे भाई मुझे कुछ रुपये भी दे गये। साथ मे मेरे लिए कुछ खाने-पीने का सामान और कपडे आदि भी वह लाये थे।

माँ के बारे मे उन्होने बतलाया कि वह अचानक बीमार पड गयी थी। इलाज चल रहा था परन्तु हालत मे कोई विशेष सुधार नही था।

माँ के बारे मे जानकर मुझे कुछ चिन्ता ज़रूर हुई। इसीलिए मैने बड़े भाई को मना कर दिया कि वह उन्हे यह न बताये कि मै जेल में हूं मैं जानता था कि यह जानकर उन्हे कष्ट ही होगा। बड़े भाई आठ-दस दिन बाद दुबारा आने का वादा करके चले गये।

हालाकि मुझे साधारण कैद हुई थी परन्तु फिर भी जेल अधिकारी मुझसे थोड़ा बहुत काम लेते थे, जैसे पानी भरने का, इधर-उधर सफाई आदि करने का। इसके बाद धीरे-धीरे असिस्टेण्ट जेलर ने जो स्टोर का इन्चार्ज था मुझे अपने साथ रख लिया। वह मुझे स्टोर की सफाई आदि करवाता, सामान उठवाता-धरवाता और बी. क्लास के कैदियों को राशन

आदि भिजवाता। यह काम मुझे पसन्द भी था, क्योंकि इसमें मुझे दिन-भर बैरक के बाहर रहने को मिलता और कभी-कभी बी क्लास के कैदियो से एक-आध सिगरेट आदि भी मिल जाती थी। मुझे जेल के कपडे भी नही पहनने पडते थे और मै ठाठ से इधर-उधर घूम-फिर भी सकता था।

बडे भाई आठ-दस दिन बाद आने को कह गये थे, परन्तु पन्द्रह दिन हो गये और वह नही आये। तभी एक दिन उनका पत्र आया। उन्होने लिखा था कि माँ की तबीयत और बिगड़ गयी है। उन्हें हैलट अस्पताल मे भर्ती कर दिया गया है। सर्जिकल वार्ड में। पेट मे कोई बड़ी शिकायत है। डाक्टरो का ख्याल है ट्यूमर या कैंसर है। आप्रेशन होगा। इसीलिए वह आ नही पाये। उन्होने यह भी लिखा था कि माँ मुझे लगातार पूछती रहती हैं।

पत्र पढकर मुझे बहुत दुख हुआ। इस ससार मे मै यदि किसीका आदर करता था तो वह माँ ही थी। उनके लिए मै कुछ भी कर सकता था। यह बात और थी कि आज तक मैने उन्हे कष्ट ही कष्ट दिया था। मेरा मन हुआ कि मै किसी भी तरह यहाँ से जाकर उन्हे देख आऊँ। मैने सुन रखा था कि लोग पैरोल पर कुछ दिनो के लिए छोड दिये जाते है। परन्तु मुझे पता चला कि यह इतना आसान नही था और फिर लम्बी सजा के दौरान ही शायद पैरोल की सुविधा मिलती है अच्छे व्यवहार के ऊपर। इसके अलावा मेरे ऊपर दो केस और चल रहे थे जिनमे छुन्नू बाबू ने मुझे झूठ ही फँसा दिया था, हालाकि उन केसो मे मेरी जमानत हो चुकी थी। परन्तु मेरे दुर्भाग्य से एक केस का मेरा एक जमानतगीर जो पेशेवर जमानतगीर था, किसी जुर्म मे पकड लिया गया था, झूठी गवाही देने के जुर्म में या, फिर जमानत के सिलसिले मे अपने सामाजिक स्तर के बारे मे झूठा बयान देने के अपराध मे और उस केस मे मेरी जमानत रद्द कर दी गयी थी। वैसे उस केस मे दूसरी जमानत दे सकता था परन्तु छुन्नू बाबूवाले केस से छुटकारा मिलना मुश्किल था। मेरा ख्याल था कि

छुन्नू बाबू जल्दी ही मेरा खर्चा देने से ऊब जायेंगे और कम से कम उस केस मे मुझे बरी कर दिया जाएगा। परन्तु इतने दिन हो जाने के बाद अब मुझे लगने लगा था कि छुन्नू बाबू मेरी कैद की मियाद पूरी ही कराकर छोडेगे।

वैसे मै पूरी ज़िन्दगी, बल्कि एक से अधिक जिन्दगियाँ यदि होती हैं तो, जेल मे काट सकता था, परन्तु मै चाहता था कि कम से कम एक बार जाकर माँ को देख आऊँ। उनसे मिल आऊँ।

तभी तीन-चार दिनो बाद बड़े भाई का दूसरा पत्र आया। उन्होने लिखा था कि अगले शुक्रवार को मॉ का आप्रेशन होना था। डाक्टरो को कोई खास उम्मीद नही थी। परन्तु आप्रेशन के अलावा और कोई चारा भी नही था। मगल को यह पत्र मुझे मिला था। पत्र पाते ही मै बेचैन होने लगा। किसी भी कीमत पर मै आप्रेशन से पहले मॉ से मिलना चाहता था। मै सोचता रहा कि क्या करूँ। मैंने यह भी निर्णय ले लिया था कि यदि सम्भव हुआ तो यहाँ से भाग जाऊँगा। बाद में जो होगा देखा जाएगा। परन्तु यह इतना आसान नही था।

आखिर जब कोई रास्ता नजर नही आया तो मैने छुन्नू बाबू को पत्र लिखा कि सिर्फ तीन-चार दिनो के लिए वह मुझे बाहर आ जाने दे ताकि मै अपनी बीमार मॉ को देख आऊँ। उसके बाद वह चाहें तो मुझे उम्र-भर के लिए जेल मे बन्द करवा दे। पत्र मे मैने उनसे माफी भी माँगी और उन्हे आश्वासन दिया कि मैं उनके रास्ते मे अब कभी नही आऊँगा। बल्कि जितनी जल्दी सम्भव होगा उनका रुपया भी वापस कर दूंगा। पत्र लिखकर मैने जेल के एक सिपाही के हाथ उसे दो रुपये देकर उनके पास भिजवाया। परन्तु सिपाही ने मुझे लौटकर बताया कि उन्होने पत्र पढकर फाडकर फेंक दिया और मुझे गालियॉ भी दी। मेरा खून खौल उठा। मैने कसम खायी कि यदि माँ को कुछ हो गया तो छुन्नू बाबू को जिन्दा न छोड़ूंगा। परन्तु कसम अपनी जगह थी। फिलहाल तो मेरे सामने समस्या थी कि किस तरह मै यहॉ से निकलकर मॉ को देख सकूं।

शुक्रवार को यानी जिस दिन माँ का आप्रेशन होने को था मै दिन-भर और रात-भर बेचैन रहा। रात मे मुझे नीद भी नही आयी और थोडी देर के लिए जब मै सोया भी तो मुझे अजीब सपने आते रहे। मैने तय किया कि किसी भी कीमत पर मैं यहाँ से भाग निकलूँगा।

सौभाग्य से दूसरे दिन ही मुझे मौका मिल गया।

मैं गोदाम मे काम कर रहा था। असिस्टेण्ट जेलर ने मुझे गोदाम साफ करने के लिए कहा था। सीढी लेकर मै ऊपर तक दीवालो से मकडी के जाले आदि हटा रहा था। तभी असिस्टेण्ट जेलर आकर मेरे ऊपर बिगडने लगा। यह क्या हो रहा है उसने कहा, यह सीढी-पीढी हटाओ यहाँ से। फर्श साफ करो। सामान रखा जाएगा।

मैंने सीढी निकालकर बाहर रख दी। झाडू लेकर फर्श साफ करने लगा। असिस्टेण्ट जेलर कुछ देर वही खडा रहा। तब बाहर निकलकर किसीसे बात करने लगा। वह किसीसे दो मिनट रुकने को कह रहा था। कूडा एक जगह ढेर करके मै बाहर निकल आया।

असिस्टेण्ट जेलर ने अन्दर घुसकर देखा। तब बाहर खड़े हुए आदमी से बोला—लाइए आप। इस किनारे से रखवाना शुरू कीजिए। इसके बाद मेरी ओर मुडा। —यह कूडा उठाकर बाहर फेक दो।

मैने बाहर निकलकर देखा। कपडे का एक गदा टुकड़ा मुझे मिला। मैं उसे लेकर उसमे कूडा उठाने लगा। कूडा फेकने दूसरी ओर मै गया तो देखा फाटक पर एक ट्रक खडा था। मज़दूर उससे बोरे उतारकर गोदाम मे रख रहे थे। उसका आधा हिस्सा फाटक के उस ओर तथा पीछे का आधा इस ओर था।

कूडा फेककर मैं लौटा तो देखा असिस्टेण्ट जेलर आकर अपनी मेज पर बैठकर रजिस्टर मे कुछ देख रहा था। एक आदमी उसके पास खडा

उससे कुछ बाते कर रहा था। सम्भवत: वह ट्रक का ड्राइवर था और जेल देखने की आज्ञा चाहता था।

मैं चुपचाप वही खड़ा हो गया।

असिस्टेण्ट जेलर कुछ देर ड्राइवर से बात करता रहा तब मुझसे बोला—आओ इनको तिवारीजी के पास ले जाओ। कहना इन्हे जेल घुमा दे। बता देना मैने भेजा है।

मैं उसे लेकर चल दिया। दोनो मजदूर धीरे-धीरे बोरे उतार रहे थे। तभी मुझे रामजस दिखाई दे गया। तीन नम्बर का नम्बरदार। मैंने उससे कहा कि वह ड्राइवर को साथ लेता जाये और तिवारीजी से मिलवाकर असिस्टेण्ट जेलर का सदेश दे दे। वह राजी हो गया।

मैं एक क्षण उन्हे जाते देखता रहा। तब मुडकर ट्रक के पास आ गया। असिस्टेण्ट जेलर की पीठ मेरी ओर थी। वह रजिस्टर पर झुका हुआ था। मैं घूमकर ट्रक के इज़न के पास आ गया। मेइन गेटवाला कान्स्टेबुल फोन पर किसीसे बात कर रहा था। एक क्षण मैंने सोचा तब निश्चय किया कि मै चाँस ले सकता हूं। कान्स्टेबुल नया था। मैं उसे पहली बार देख रहा था। वैसे भी गेटवाले कान्स्टेबुल कैदियो को कम ही जानते है। इससे पहले कि वह फोन रखकर मुडे मै ट्रक मे डाइवर वाले कैबिन पर चढ गया। सामने शीशे के ऊपर कुछ छोटा-मोटा सामान रखने की जगह बनी थी। मैने देखा उसपर एक सिगरेट पडी थी। मैने सिगरेट उठाकर हाथ मे ले ली और कान्स्टेबुल के उधर मुडने की प्रतीक्षा करने लगा। वह फोन पर बात कर रहा था।

—नही आये·········पता नही। क्वार्टर पर होगे········ रुकिये सक्सेना साहब से पता करता हूं········।

मै डरा कही वह सक्सेना को यहाॅ बुला न लाये। देखा जायेगा, मैंने सोचा।

कान्स्टेबुल ने टेलीफोन रख दिया और अन्दर चला गया। जाते समय उसने मुझे बैठे देखा। मै स्टैरिग पर हाथ रखे सामने देखता रहा।

मैं मन ही मन गिनती गिनने लगा। सत्तानवे तक पहुँचा, तभी कान्स्टेबुल लौट आया। अकेले। हलो – उसने फोन उठाकर कहा—जी वह बाहर गये हैं। छुट्टी पर·· ··हाँ, सोमवार को लौटेंगे।

मैंने साँस ली। फोन रखकर वह मुड़ा तो मैंने पूछा—माचिस होगी आपके पास ?

उसने जेब मे माचिस निकाल दी। मैं नीचे उतर आया। माचिस लेकर सिगरेट जलायी और वही खडे होकर पीने लगा।

—कितने कैदी होगे यहाँ ? मैंने उससे पूछा।

—कौन जाने, होंगे चार-पाँच सौ। उसने कहा।

—चार-पाँ · सौ ! मैने आश्चर्य व्यक्त किया।

—और क्या।

—सब अलग-अलग कोठरियो मे बन्द रहते है ?

—नही। बैरकें बनी हैं।

—अच्छा।

मै चुप हो गया।

—खाने-पीने का क्या इन्तज़ाम होता है ? थोडी देर बाद मैने पूछा।

—बनता है सब यहीं। उसने भी बीडी निकाल ली।

मैं फिर कुछ देर चुप रहा।

—अन्दर होटल है क्या ?

—होटल नही तो सनीमा है ! जेल है कि बाज़ार ?

—बाहर तो दुकाने है।

—हां, बाहर क्यो नही है ?

– खोलिये ज़रा चाय पा आये तब तक। अभी तो माल उतरने मे देर लगेगी।

—पी आओ। उसने जेब से चाभी निकाली।

मुझे लगा मेरा दिल बहुत जोर से धडकने लगा है। इतने जोर से कि मुझे लगा कही वह कमीज के ऊपर से देख न ले। परन्तु वह आगे बढकर ताला खोलने लगा।

उसके फाटक खोलते ही मै बिना उसकी ओर देखे बाहर निकलकर सीधा सड़क पर आ गया। पहले सोचा दौड़ूं। परन्तु फिर एक रिक्शे-वाले से बात की।

—खाली हो?

—जी।

—चलो। मै चढकर बैठ गया।

उसने मेरी ओर देखा। शायद सूरत-शक्ल से मै ऐसा आदमी नही लग रहा था कि बिना पैसे तय किये रिक्शे पर बैठ जाऊँ। परन्तु वह चल दिया। मैं फिर भी निश्चय नही कर पा रहा था। मेरी दाहिनी ओर खेत थे। सोचा, चलते रिक्शे से फाँदकर खेतो मे घुस जाऊँ। परन्तु रिक्शेवाला चौंक सकता था। शोरगुल भी मचा सकता था। ड्राइवर को कितना समय लगेगा जेल देखने मे? क्या-क्या देखेगा वह?

मेरी सिगरेट समाप्त हो गयी थी और मै बुरी तरह एक सिगरेट चाहता था। कही से भी मिले। जेब मे एक भी पैसा नही था।

रिक्शेवाले ने अपने आप रिक्शा दाहिनी ओर मोड दिया था। रेलवे का पुल सामने था। फिर मन मे आया, उतरकर सीढ़ियो पर दौड लगा दूं। परन्तु फिर वही भय! रिक्शेवाला दौडकर पकड़ सकता था। जेल मे वैन वगैरह होते है क्या? मैने आज तक नही देखी थी। बाहर एक स्कूटर जरूर खडा था। डाक्टर का हो सकता है।

तभी अचानक रिक्शेवाले का पहिया पँचर हो गया। सामने रेलवे लाइन की बाउण्ड्री के सीखचे लगे थे। कोई सौ फुट पर एक सीखचा टूटा था जिससे आदमी निकल सकता था। शायद यही करना पडेगा मुझे।

तभी दूसरा रिक्शा आता दिखाई दिया। खाली। —कहाँ जाओगे? मेरे रिक्शेवाले ने मुझसे पूछा।

—सदर। मैंने कहा।

—सदर तो दूर है। आप दूसरा रिक्शा पकड़ लीजिये।

मैं नीचे नही उतरा। तभी दूसरा रिक्शा आ गया। —सदर ले जाओगे एक सवारी। मेरे रिक्शेवाले ने उससे पूछा।

—क्यो, क्या बात है?

—पचर हो गया।

—क्या तय किया था।

—तुम बोलो न। मैने कहा।

—एक रुपया।

—एक रुपया! बारह आने लगेगे।

—नही। वह आगे बढने लगा।

—रुको अच्छा। मैने कहा

वह रुक गया।

—दस के टूटे है तुम्हारे पास? मैंने अपने रिक्शेवाले से पूछा।

—अरे कहाँ बाबू जी! उसने कहा।

मै दूसरे रिक्शे पर बैठ गया। —एक अठन्नी दे दो इसको। वहाँ चलकर दे दूँगा।

मैने कहा। —और यह हुड बन्द करो।

उसने अठन्नी दे दी। हुड भी आन कर दिया। मेरी जान मे जान आयी।

मै फिर सोचने लगा। सदर जाकर क्या करूँगा? यह रिक्शेवाला और जवान था। इसके सामने तो दौड लगा पाना भी मुश्किल था।

—आगरेवाली गाडी कितने बजे जाती है? मालूम है? मैने उससे पूछा।

—मुझे नही मालूम? उसने कहा।

रिक्शा ढाल पर था। —सुनो, इधर मोड लेना स्टेशन की तरफ। पता कर ले। मैने कहा।

—और पैसे पड जायेगे।

—तुम तो बडे सख्त आदमी लगते हो। और पैसे ले लेना, उसमे क्या बात है।

उसने रिक्शा स्टेशन की ओर मोड लिया। फर्स्ट क्लास बुकिंग के पास ही मैने उसे रुकवा दिया। —यही रुको, पता करके आता हूँ। मैंने कहा।

वह रुक गया। जल्दी-जल्दी स्टेशन की बिल्डिग मे घुसा और बिना किसी ओर देखे सीधे प्लेटफार्म पर आ गया।

—कानपुर कोई गाडी जाती है इस समय? सामने खडे कुली से मैंने पूछा।

—चार नम्बर से छूटनेवाली है। उसने बताया।

मै दौडने लगा। ब्रिज पर था तभी गाडी सरकने लगी। मै और तेज़ दौडने लगा। एक डिब्बे का हैंण्डिल मेरी पकड मे आ गया। सेकेन्ड क्लास था। देखा जायेगा, मैने सोचा। अन्दर सात-आठ मुसाफिर थे। मै चुप-चाप खिडकी के पासवाली सीट पर बैठ गया।

करीब-करीब सभी लोगो ने मुझे घूरकर देखा। शायद मैं दूसरे दर्जे का मुसाफिर नही लग रहा था। या फिर जिस तरह दौडकर मैने गाडी पकडी थी उससे लोग चौके हो।

जो भी हो मैने उनकी परवाह नही की और खिडकी की तरफ मुंह करके बाहर झाकने लगा। ट्रेन ने अब तक रफ्तार पकड ली थी। मेरी साँस भी धीरे-धीरे स्थिर होने लगी थी और मुझे बुरी तरह सिगरेट की तलब लगने लगी थी। मैने डिब्बे मे इधर-उधर देखा। मेरे बगल-वाला व्यक्ति सिगरेट पी रहा था। पनामा का पूरा पैकेट और माचिस उसकी बगल मे रखा था। मैने सोचा उससे एक सिगरेट माँग लूं। परन्तु मैने ऐसा नही किया और दुबारा खिडकी के बाहर झाँकने लगा। आखिर मुझसे नही रहा गया और मैने उससे सिगरेट के लिए कह ही

दिया। उसने मुझे घूरकर देखा, परन्तु फिर बिना कुछ कहे उसने पैकट से एक सिगरेट निकालकर मुझे दे दी। सिगरेट जलाकर मैं कुछ निश्चित-सा हो गया। हालाँकि मेरे दिमाग मे पिछले एक घण्टे की घटनाये लगातार नाच रही थी। मैं अनुमान नही लगा पा रहा था कि मेरी अनुपस्थिति अब तक जेल-अधिकारियो को पता चल गयी होगी या नही। हो सकता है, तुरन्त किसीने इस बात पर चिन्ता न की हो और यह समझ लिया गया हो कि मैं कहीं और काम कर रहा हूँ। परन्तु यह निश्चित था कि दोपहर की गिनती के समय बात पकड मे आ जायेगी। तब क्या होगा? पहले तो जेल मे इधर-उधर खोजबीन होगी। वार्डरो और चौकीदारो से पूछा जायेगा। यह भी हो सकता हे कि कुछ देर प्रतीक्षा करने के बाद या फिर असली ड्राइवर के आने के बाद मुख्य गेट के चौकीदार ने स्वय रिपोर्ट कर दी हो। जो भी हो एक-आध घटे मे यह पता चल ही जाना था। और फिर हो सकता है, शहर की पुलिस को इत्तला कर दी जाये। हो सकता है, शहर से बाहर जानेवाली ट्रेनो और बसो को देखा जाये। हो सकता है कानपुर पुलिस को भी खबर कर दी जाये। मैने तय किया कि रास्ते मे ही कही उतर जाऊँगा। गगा-घाट पर। यदि ट्रेन वहाँ रुकी तो। या फिर चेन खीच लूँगा। तब तक अमौती निकल गया था और ट्रेन वहाँ नही रुकी थी। इसके मायने यह एक्सप्रेस ट्रेन थी, मैने अनुमान लगाया। गगाघाट भी न रुकेगी। फिर? मुझे चेन खीचनी ही पडेगी। वैसे भी मेरे पास टिकट नही था और स्टेशन पर उतरना किसी भी मायने मे मेरे लिए मुनासिब नही था।

—कहाँ जाओगे?

मैने घूमकर देखा। प्रश्न मुझसे ही किया गया था।

—कानपुर। मैने कहा और तब अपने आप जोड़ दिया, मेरी माँ वहाँ बहुत बीमार हैं। सीरियस कन्डीशन है। आज ही मुझे पता चला।

वह व्यक्ति एक क्षण चुप रहा। तब बोला—क्या मर्ज है?

—मुझे पता नही, मैने कहा, आज सुबह ही तार मिला है बड़े भाई का। मै झूठ बोला।

गाडी कुछ धीमी होने लगी थी। मुझे डर लगा कि कही मैजिस्ट्रेट की चेकिंग तो नही है, या फिर पुलिस ने मेरी तलाश मे तो नही गाडी रुकवा दी है।

तभी गडी ने एक सीटी मारी और रुक गयी। मैने उठकर दरवाजे से बाहर झाका। गाडी किसी स्टेशन के आउटर सिगनल पर रुकी थी। सिगनल नही था। कोई असाधारण बात नही लगी मुझे। मै एक क्षण वही पर खडा रहा। तब चुपचाप उस डिब्बे से उतरकर तीसरे दर्जे के एक डिब्बे मे चढ गया। यहाँ भीड ज्यादा थी। फिर भी मैंने यहाँ ज़रा ज्यादा निचितता अनुभव की।

थोडी देर मे सिगनल हो गया और गाडी दुबारा चल दी।

दुबारा गाडी उन्नाव स्टेशन पर रुकी जहाँ उसे रुकना था। एक बार मैने सोचा कि बाहर उतरूँ। परन्तु फिर मै टाल गया और डिब्बे के अन्दर ही बना रहा। कोई पाँच मिनट गाडी रुकी होगी तब दुबारा चल दी।

मगरवारा आ गया। तब गगा घाट। गाडी दोनो जगह नही रुकी। गगा का पुल आ गया। मैं सडास में चला गया। सोचा वही से चेन खीच दूँगा। परन्तु मैने चेन पर हाथ रखा ही था कि गाडी अपने आप ही धीमी होने लगी। काफी धीमी हो गयी। और कुछ ही देर मे सीटी मारकर रुक गयी। मै सडास के बाहर निकल आया। मैंने देखा कितने ही लोग वहाँ उतर रहे थे। बल्कि पटरी के पार सडक पर काफी रिक्शेवाले भी जमा थे। मै भी उतर गया।

मुझे पता नही था कि हैलेट अस्पताल कहाँ है। अत मैंने सोचा रिक्शा ले लूँ। और बिना इस बात की फिक्र किये कि मेरी जेब मे एक भी पैसा नही है मैने रिक्शा ले लिया। हाँ, मैने जान-बूझकर एक बूढा

रिक्शेवाला पकडा ताकि ज़रूरत पडने पर उससे झगडा कर सकूं या भाग सकूं।

रिक्शेवाला मुझे लेकर चल दिया।

अस्पताल पहुँचते ही जो समस्या मेरे सामने आनी थी वह थी रिक्शेवाले को भुगतान करने की। मैने सोचा कि उसे रुकने को कहूँगा। अस्पताल मे बडे भाई या भाभी या कोई न कोई तो होगा ही माँ के पास। उससे लाकर दे दूँगा। परन्तु फिर मैने सोचा कि हो सकता है रिक्शेवाला न माने। तब? देखा जायेगा। मैने सोचा और रिक्शेवाले से बात करने लगा।

—कहाँ के रहनेवाले हो? मैने उससे पूछा।

—गोडा जिला। उसने पैंडल मारते हुए कहा।

—खास गोडा के हो या किसी गाँव के?

—महाराज गज तहसील मे गाँव है।

—मै भी वही का रहनेवाला हूँ, तुम तो अपने देश के निकल आये। मैंने कह तो दिया, परन्तु फिर सोचा कि कही उसने गाँव का नाम पूछा तो क्या कहूँगा। परन्तु वह चुपचाप रिक्शा चलाता रहा।

—कितना कमा लेते हो एक दिन में?

—यही कोई सात-आठ रुपये मिल जाते हैं। उसने कहा।

—दूध वगैरह पीते हो या नही? शराब तो नही पीते?

—न बाबू! शराब को कभी हाथ नही लगाता।

—यह बडा अच्छा है। शराब आदमी को खोखला कर देती है। बल्कि दूध जरूर पिया करो। रिक्शा चलाने मे बडी मेहनत पडती है। नाम क्या है तुम्हारा।

—रघुवीर। उसने कहा।

—मै चुप हो गया। तभी थोडी देर मे अस्पताल आ गया।

—अन्दर चले चले? उसने पूछा।

—हाँ। मैने कहा।

उसने रिक्शा फाटक के अन्दर मोड़ दिया। सामने इमरजेन्सी वार्ड था। उसने रिक्शा वही रोक दिया।

—एक मिनट रुको मै अभी आया। मैने कहा और बिना उसके उत्तर की प्रतीक्षा किये सीधे इमरजेन्सी मे घुस गया। अन्दर जाकर मैने सर्जिकल वार्ड का पता किया और अन्दर ही अन्दर दूसरी ओर निकलकर वहाँ चला गया जहाॅ सर्जिकल वार्ड के बारे मे मुझे बताया गया था। मुझे केवल इतना पता था कि माॅ सर्जिकल वार्ड में भर्ती है। बस। परन्तु वहाँ जाकर मैने सारा वार्ड छान मारा, एक-एक बेड देख ली माँ वहाँ नही थी। कोई और सर्जिकल वार्ड है? मैने वहाॅ की नर्स से पूछा तो उसने बताया कि फीमेल सर्जिकल वार्ड भी है जो मेल वार्ड के बिलकुल सामने-वाले वराडे मे दूसरी ओर था। वैसे मेल वार्ड मे भी कुछ स्त्रियाँ भर्ती थी। मै फीमेल वार्ड मे आ गया और उसकी सारी बेडो का चक्कर लगा गया, परन्तु माॅ वहाँ भी नही थी। आप्रेशनवाले रोगी कही और तो नही रखे जाते या फिर कही माँ वापस घर तो नही चली गयी। मैंने सोचा। परन्तु घर कहाॅ है यह भी मुझे पता नही था। पहले जिस मकान मे भाई रहते थे उसे मै जानता था। परन्तु इस बीच उन्होने बदल दिया था। तब?

मैने वार्ड मे बैठी नर्स से पता किया। परन्तु उसने बताया कि उसे पता नही है, मै मेल वार्ड मे जाकर पूछ लूँ। मै दुबारा मेल वार्ड वापस आ गया और वहाॅ बैठी सिस्टर से पूछने लगा। उसने भी यही उत्तर दिया कि उसे पता नही है। परन्तु तभी कोई डाक्टर अन्दर आ गया और सिस्टर ने उससे पूछा कि कोई ऐसा मरीज यहाॅ भर्ती था। डाक्टर ने मुझसे नाम पूछा। मैने माॅ का नाम बता दिया। साथ-साथ भाई और पिता का नाम भी बताया कि हो सकता है कि मदर आफ अमुक या मिसेज अमुक हो।

—क्या मर्ज था? डाक्टर ने पूछा।

—पेट मे कुछ शिकायत थी शायद। मैंने कहा।

—क्या उम्र थी। साठ-सत्तर साल?

—सत्तर तो नही। हाँ, साठ के आसपास होगी।

—डाक्टर महाजन का केस था?

—मुझे पता नही। मैने कहा।

—आप मेडिकल वार्ड नम्बर चार मे देख लीजिए जाकर। एक केस था कैंसर का। दस-बारह दिन पहले वहाँ ट्रांस्फर कर दिया गया था।

—यह चार नम्बर कहाँ है? मैने पूछा।

—इसी वराडे मे आगे चले जाइये।

मै चार नम्बर मेडिकल वार्ड आ गया। वहाँ भी मैंने सारी बेड देख डाली परन्तु माँ वहाँ भी नही थी।

वहाँ भी एक नर्स वार्ड के सिरे पर मेज डाले बैठी थी। मैंने उससे जाकर पूछा।

—मिसेज दयाल? उसने मुझसे पूछा।

—जी हाँ। मैने कहा।

आज सुबह डेथ हो गयी। उसने कहा और दुबारा फाइल देखने लगी जिसे वह पहले से ही देख रही थी।

मै सकते मे आ गया। एक क्षण मेरी समझ मे नही आया कि मैं क्या करूँ। तब मैने उससे दुबारा पूछा—'आप श्योर हैं? कल उनका आप्रेशन हुआ था। कल जो बीत गया। —हाँ। उसने कहा, आठ नम्बर बेड थी उनकी। आप्रेशन डाक्टर ने मना कर दिया था। इसीलिए मेडिकल वार्ड भेज दिया गया था।

मै एक क्षण वही खडा रहा। तब आठ नम्बर बेड के पास आ गया। वह खाली थी। नौ पर एक अधेड उम्र का व्यक्ति था।

—इस बेड पर कौन था? मैने उससे आठ नम्बर बेड के बारे मे पूछा।

—बुढिया थी एक। आज सुबह मर गयी। उसने कहा।

उसके इस तरह कहने पर मुझे उसपर कुछ गुस्सा-सा आया। परन्तु मैं ज़ब्त कर गया।

हो सकता है मेरे चेहरे पर कुछ भाव बदला हो। या फिर जो भी हो उस व्यक्ति ने मुझसे पूछा—तुम कौन हो उसके?

—लडका हूं उनका। मैंने कहा।

—सूरज नाम है तुम्हारा? उसने पूछा।

—हाँ। तुमको कैसे पता?

—तुम बाहर थे न कही? तुम्हारा नाम वह बार-बार लेती थी। वैसे तीन दिन से बेहोश थी। मगर बेहोशी मे भी दिन मे दो-तीन बार तुमको बुलाती थी। तुम क्या अभी आये हो?

—हाँ। मैने कहा।

उस व्यक्ति ने अफसोस ज़ाहिर किया। —उनका मरना ही ठीक था। बहुत तकलीफ थी उनको। तुम्हारे भाई ने तो बडी सेवा की। मगर भगवान की मर्जी मे किसका दखल है।

—मेरे भाई कहाँ रहते है, आपको पता है? मैने पूछा।

—तुमको मालूम नही? रजीत नगर मे शायद बताया था उन्होने। सिस्टर से पूछ लो। उसके पास पता नोट होगा। मैने सिस्टर के पास जाकर पूछा तो पहले उसने मना कर दिया। परन्तु फिर बाद मे मेरे अनुनय-विनय करने पर उसने फाइलें उलटना शुरू किया। आखिर उसने अलमारी मे पडी हुई कुछ फाइलो मे से माँ की फाइल खोज निकाली, लेकिन मेरे दुर्भाग्य से उसमे घर की जगह बडे भाई साहब के आफिस का पता था। मगर उसमे किसी एक्सरे की दुकान का पर्चा लगा था। सिस्टर ने ही मुझे सुझाया कि आप एक्सरे की दुकान पर जाकर पता कर लीजिये। हो सकता है वहाँ घर का पता लिखा हो। मैने दुकान का पता, रिपोर्ट का नम्बर और उसकी तारीख नोट की और बाहर आ गया।

रिक्शेवाला अपने स्थान पर नही था। तभी मैने देखा वह कुछ दूर पर एक पेड़ के नीचे रिक्शा खडा किये उसकी गद्दी पर अधलेटा-सा सो रहा था। मैने जाकर उसे जगाया तो वह गडबड़ाकर उठ बैठा। जरूर मेरे चेहरे से उसे कुछ पता चला होगा, क्योकि उसने पूछा—सब खैरियत तो है बाबूजी ?

—नही। मैने कहा। मेरी माँ यही भर्ती थी, उनका देहान्त हो गया।

उसने अफसोस ज़ाहिर किया, तब बोला– कहाँ चलें अब ?

—बाहर। मैने कहा। क्योकि एक्सरे की दुकान बाहर सडक पर ही थी।

वहाँ लाकर मैने फिर उसे सडक पर रोक दिया। और दुकान के अन्दर चला गया। वहाँ केवल एक नौकर था। उसने बताया कि सारे कागज़ अलमारी मे बन्द हैं। डाक्टर साहब तीन बजे आयेंगे। तभी कुछ पता चल पायेगा। सवा दो बजे थे। मैं वही बैठ गया। रिक्शेवाले को बता दिया, उसे कुछ देर रुकना होगा। फिक्र मत करो, तुम्हे पूरी मजदूरी मिलेगी। मैंने उससे कहा। वैसे शायद मैं यह न कहता तो भी वह रुका रहता। हो सकता है, मुझे अपने गाँव का समझकर वह मुझसे हमदर्दी करने लगा हो। जो भी हो उसने दुबारा रिक्शा छाह मे लगा लिया और गद्दी पर चढकर उसपर अधलेटा हो गया।

कोई तीन बजकर दस मिनट पर डाक्टर आया। मैने उसे अपनी बात बतायी तो उसने सारे कागज निकाले। सौभाग्य से या फिर जो भी कहिये, रसीद पर बडे भाई के मकान का पता, नम्बर आदि सब था। मैने तुरन्त जाकर रिक्शेवाले को उठाया और रजीत नगर चल दिया। मकान खोजने मे मुझे देर नही लगी, क्योकि जैसे ही मैने भाई का नाम लिया और यह बताया कि आज सुबह ही अस्पताल मे उनकी माँ की मृत्यु हुई है तो एक सज्जन ने मुझे उनका ठीक पता बता दिया। परन्तु

उन्होने कहा, वह लोग तो सब घाट गये हुए हैं, घर पर औरतों के अलावा शायद ही कोई हो।

—किस घाट? मैने पूछा।

—भैरवघाट।

मै रिक्शे से उतरा नही था। उसपर बैठे-बैठे ही मैने रिक्शेवाले से कहा कि वह भैरवघाट चले। उसने रिक्शा मोड लिया।

कोई आध घटे, चालीस मिनट बाद मै घाट पहुँच गया।

सडक से मिली हुई लकडी की दो-तीन टाले थी। टालो की बगल से ही घाट के लिए पक्का रास्ता था। कुछ दूर चलकर सीढियाँ थी जो बीच मे दो-तीन जगह समतल हो गयी थी। तब एक बडा-सा पक्की ईटो का मैदान था जिसमे पीपल, नीम आदि के दो-तीन पेड थे। उसके बाद गगा की रेती थी और उससे मिली हुई जल की पतली धारा जिसे नहर के रूप मे पानी की मुख्य धारा से जो काफी दूर थी, काटकर लाया गया था।

रिक्शा सडक पर रुकवाकर मैं सीढियाँ उतरता हुआ घाट पर आ गया। वहाँ दो-तीन लाशे जल रही थी। उनके साथ आये हुए लोग वही ईटो के पक्के मैदान मे, वृक्षो के नीचे बने चबूतरो आदि पर बिखरे हुए थे। पानी मे कुछ भैसे तैर रही थी जिन्हे चरवाहे शायद उस पार से चराकर वापस ला रहे थे। दो-तीन नावे भी जल के उस किनारे लगी थी।

मै वहाँ जमा भीड़ मे भाई को खोजने लगा। वह कही दिखाई नही दिये। तब मैने उन्ही लोगो से पूछताछ शुरू की कि वे लाशे कहाँ से आयी थी। उनसे पता चला कि माँ की लाश उनमे नही थी। तब क्या वे लोग सब काम निपटाकर चले गये? एक आदमी ने मुझे घाट के बाईं ओर बनी सीढियो के ऊपर एक कमरे की ओर इशारा करते हुए बताया कि मै वहाँ जाकर पता कर लूँ। क्योकि जो भी लाशे वहाँ आती थी उनकी लिखा-पढी वहाँ होती थी।

मैं वहाँ चला गया। वहाँ बैठे हुए व्यक्ति ने रजिस्टर खोलकर बताया कि हाँ, लाश वहाँ आयी थी। उसके बाद मे चार लाशें और आ चुकी थी। हो सकता है वे लोग वापस लौट गये हो। वहाँ से लौटकर मैने घाट पर घूम रहे पडो से पूछा। उनमे से एक ने बताया कि हाँ, वे लोग चले गये। रेत पर दो-तीन जगह जली हुई लकडियो का ढेर था जिनमें एक मे अभी कुछ आग थी और शेष राख का ढेर हो चुकी थी। उन्हीमे से एक की ओर इशारा करते हुए उसने बताया कि यह चिता थी।

मैं उस राख के ढेर के पास गया जो मुश्किल से दस बारह मूठी रही होगी। लकड़ी के जले हुए अवशेषो के बीच दो-एक हड्डियो के टुकडे भी थे। मै एक क्षण वहाँ खडा रहा। तो यह थी माँ जो मेरा नाम लेते-लेते चली गयी। मैने झुककर राख को छूकर माथे मे लगाया और मन ही मन कसम खायी कि जिस व्यक्ति के कारण मै माँ से उनकी मृत्यु के पहले मिल नही सका उसको इस ससार मे जिन्दा नही छोडूंगा।

कुछ ही क्षण मै वहाँ रुका। तब वापस मुड गया। अब मेरे पास समस्या थी रिक्शेवाले का पेमेट करने की जो सुबह से मेरे साथ था। मैने सोचा कि मै भाई के घर जाऊँ और उनसे पैसे लेकर रिक्शेवाले को दे दूं। परन्तु दूसरे क्षण ही मैने निर्णय किया कि मैं ऐसा नही करूंगा। इसमे डर इस बात का था कि अभी थोडी देर पहले खायी गयी कसम को पूरा करने मे बाधा पड सकती थी। यह भी हो सकता था कि जेल मे मेरी अनुपस्थिति ज्ञात हो जाने के बाद पुलिस मुझे खोजने बडे भाई के घर भी पहुँचे।

– राम नाम सत्य है।

—सत्य बोलो मुक्ति है।

एक और लाश आ रही थी। सीढियो पर लोग उसे सम्भालकर नीचे ला रहे थे। तभी मै अर्थी के बगल से गुजरा और पीछे से बाई ओर कधा देनेवाले व्यक्ति के कुर्ते की जेब मे मुझे चमडे का काला पर्स दिखाई दे

गया। शायद सेकेंड का दसवाँ हिस्सा भी मुझे निर्णय लेने मे नही लगा और उससे भी कम समय मे पर्स मेरे हाथ से होता हुआ मेरी पतलून की जेब मे था। बिना इधर-उधर देखे मैं सडक पर आ गया। रिक्शावाला गद्दी पर बैठा बीडी पी रहा था।

—चलो। मैने कहा तो वह मुझे रिक्शे पर बिठाकर चल दिया। थोडी ही दूर चलकर ढाल था। ढाल पर रिक्शा खासा तेज हो गया। मैंने पीछे मुडकर देखा। कही कोई नही था। मैने पर्स निकालकर देखा। काफी रुपये थे उसमे। मैने अनुमान लगाया कम से कम दो सौ जरूर होगे। मैंने पर्स दुबारा जेब मे रख लिया।

शाम होने लगी थी।

—कहाँ चले? रिक्शेवाले ने मुझसे पूछा।

—कही भी चलो। मैने कहा। फिर अपने आप बोला—स्टेशन की तरफ ही चलो। वह बदस्तूर चलता रहा।

मुझे बराबर माँ की याद आ रही थी। कोई एक महीने वह अस्पताल मे भर्ती रही थी। मैने उन्हे बहुत कष्ट दिया। उनके बक्से से कितने ही रुपये और जेवर चुराये थे। परन्तु घर मे अगर कोई मेरा ख्याल रखता था तो वही थी। जिस बात की भी मै ज़िद पकड लेता उसे उनसे पूरा ही करा लेता। मरते समय तक उन्होने मुझे याद किया था। बेहोशी की हालत मे भी मेरा नाम लेती रही थी। वैसे उनके बगलवाला मरीज न भी बताता तो भी मुझे यह पता था कि ज़रूर हर समय वह मुझे याद करती रही होगी। बडे भाई से भी कहा होगा कि वह किसी तरह मुझको बुलवा दे। और मैं मरते समय उनको देख भी नही पाया था। लाश भी नही देख सका। अतिम समय सेवा करने की बात तो दूर रही।...छुन्नू बाबू! ज्यादा से ज्यादा तुम्हारी जिन्दगी चौबीस घटे और है। मुझे तो जो होगा देखा जायेगा। मैंने मन ही मन कहा।

परन्तु जो कुछ भी मुझे करना है मुझे जल्दी करना होगा, मैंने सोचा। पुलिस कब मुझे पकड ले इसका कोई भरोसा नही था।

—लोहा बाज़ार यही कही है? मैने रिक्शेवाले से पूछा—जहाँ चाकू-कैंची वगैरह मिलते हैं। जानते हो?

—जी।

—पहले वही चलो।

वह मुझे सडक से गलियो में घुमाता हुआ लोहा बाज़ार में ले आया।

वहाँ से एक दूकान से मैने कोई आठ इच फलवाला बटन दबाकर खुलनेवाला एक कीमती चाकू खरीदा और वापस रिक्शे पर बैठकर स्टेशन की ओर चल दिया।

दिन-भर मैंने कुछ नही खाया था। अचानक मुझे लगा कि मैं भूखा हूँ। तभी सडक पर एक बार देखकर मैंने रिक्शा रुकवा लिया। दस रुपये निकालकर मैने उसे दिये।

—ठीक है? मैने उससे पूछा।

उसने हाथ जोड दिया।

—वैसे अगर तुम रुकना चाहो तो रुको, मैं अभी थोड़ी देर में चलता हूँ।

—रुका हूँ बाबूजी! उसने कहा।

मैं बार के अन्दर घुस गया और एक खाली मेज़ पर जाकर बैठ गया। बार काफी कीमती किस्म का था और मेरे कपडे कुछ वैसे ही थे। मगर थोडी देर मे ही एक बैरा वहाँ आ गया और मीनू लाकर मेरे सामने रख दिया।

—एक पेग रम ले आओ। बिना मीनू देखे मैंने कह दिया।

—कौन-सी रम? उसने पूछा। फाइन इयर, सेविन इयर, ओल्ड माक, हरक्यूलीस।

—ओल्ड माक।

बैरा चला गया। तभी मुझे ध्यान आया कि आज ही मेरी माँ का देहान्त हुआ है। मुझे शराब नही पीनी चाहिए। परन्तु मैं काफी थका हुआ था और भूखा भी।

बैरा थोडी ही देर मे रम और सोडा मेज पर रख गया।

—खाने को क्या मिलेगा? मैंने पूछा।

वह दर्जनो नाम गिना गया जिनमे गुर्दा कलेजी भी था। मैंने वही एक प्लेट मँगा लिया। एक पैकेट सिगरेट भी उससे मगवा लिया और आराम से बैठकर रम पीने लगा। कोई चार-छ पैग मै पी गया और जब मुझे खासा नशा चढने लगा तो मैने खाने का आर्डर कर दिया। इस सारे बीच मै लगातार माँ के बारे मे सोच रहा था। सोच-सोचकर मुझे रुलाई आ रही थी। बल्कि एक-दो बार रोया भी था। ऐसी ही स्थिति मे एक बार जब मै कमीज से अपने आँसू पोछे रहा था तो बार के मैनेजर ने आकर मुझसे पूछा आपकी तबीयत तो ठीक है। हाँ, मैने कहा। परन्तु फिर भी मुझे सिसकियाँ आती रही। मैनेजर एक-दो क्षण वहाँ रुका, तब वापस चला गया। दूसरी बात जो दिमाग मे घूम रही थी वह थी छुन्नू बाबू से बदला लेने की। यदि उसने मुझे जेल न भिजवाया होता तो कम से कम मैं माँ के मरते समय उनके साथ तो होता। उनकी अर्थी को कधा तो दे सकता।

कोई साढे आठ-नौ बजे चालीस-पैतालीस रुपये का बिल देकर मै बाहर निकला। रिक्शेवाला गया नही था। मेरा इन्तज़ार कर रहा था। मुझे देखते ही वह मेरी तरफ बढ आया। वहाँ से मैं सीधे स्टेशन आ गया। बस-स्टेशन। वहाँ पहुँचते ही मुझे बस मिल गयी और कोई ग्यारह बजे मै लखनऊ पहुँच गया। मेरा नशा करीब-करीब उतर गया था। लखनऊ बस-स्टेशन पर उतरने के बाद मै दुबारा शराब पीने चला गया। क्योकि जो काम मै करने जा रहा था उसके लिए जरूरी था कि मै नशे मे हूँ। वहाँ मैने फिर खासी शराब पी। पान खाये, सिगरेट के दो पेकेट जेब मे डाले और सीधे छुन्नू बाबू के घर चल दिया। रिक्शे पर बैठे-बैठे ही मैंने पर्स का ठीक से

मुआइना किया। उसमे अब भी एक सौ छप्पन रुपये बचे थे। एक डेथ सर्टीफिकेट भी उसमे था जो शायद उस मृतक के बारे मे था जिसकी लाश वे लोग घाट पर लाये थे। बिजली कम्पनी का एक बिल भी था और दो-एक हिसाब-किताब के और कागज़ थे। सारे कागज़ निकालकर मैने फाडकर फेक दिये। केवल रुपये रहने दिये। जब कुछ सोचकर पर्स भी मैने फेक दिया। रुपये वैसे ही जेब मे डाल लिये।

छुन्नू बाबू के घर पहुँचकर मैंने रिक्शा छोड दिया। जेब मे हाथ डालकर देखा। चाकू अपनी जगह पर था। मैंने उसे वही पडा रहने दिया और सीढी चढकर छुन्नू बाबू का दरवाजा खटखटाने लगा। थोड़ी देर दरवाज़ा खटखटाने के बाद उनके नौकर की आवाज़ आयी—कौन?

मैने अपना नाम बताया। नौकर ने दरवाजा नही खोला, वह वापस चला गया। यही कायदा था वहाँ का। दुबारा छुन्नू बाबू आये। उन्होने भी पूछा कौन है? मैंने दुबारा अपना नाम बताया।

हो सकता है छुन्नू बाबू को कुछ आश्चर्य हुआ हो कि मै जेल से छूटकर कैसे आ गया। हो सकता है उन्होने कुछ और समझा हो। जो भी हो उन्होने नौकर से कहा, दरवाजा खोल दो। उसने दरवाज़ा खोल दिया। नौकर मेरे सामने था। छुन्नू बाबू उसके पीछे। मै चुपचाप आगे बढ गया और उस कमरे मे चला गया जहाँ जुआ हो रहा था। दो-एक को छोडकर सब मेरे परिचित थे। मै कमरे की दूसरी ओर जाकर कुर्सी पर बैठ गया जिसपर छुन्नू बाबू बैठा करते थे और लोग फर्श पर बैठे थे। छुन्नू बाबू आकर मेरे सामने दूसरी ओर फर्श पर ही बैठ गये। किसीने कुछ कहा नही। खेल पूर्ववत् चलता रहा। हाँ, किसीने मुझसे पूछा—बटेगा पत्ता?

—अभी नही। मैंने कहा और चुपचाप बैठा रहा।

नौकर भी आकर वही बैठ गया। कोई पाँच मिनट मै इसी तरह बैठा रहा। तब मैंने नौकर से कहा—राधे, एक गिलास पानी मिलेगा?

नौकर उठकर पानी लेने चला गया। मुझे प्यास जरूर लगी थी, परतु मैने जान-बूझकर पानी माँगा था। यही एक उपाय था। जैसे ही नौकर पानी लेकर आया, मै अपने स्थान से उठ पडा और नौकर के पास पहुँच गया जो छुन्नू बाबू के पीछे खडा था। पानी लेकर मैने पिया और खाली गिलास उसे वापस कर दिया।

—और ? नौकर ने पूछा।

—हाँ, थोडा-सा। मैने कहा।

नौकर चला गया। उसके जाते ही मै बिजली की फुर्ती से मुडा और चाकू निकालकर छुन्नू बाबू की पीठ मे वार करने लगा। जान-बूझकर मैंने बाईं तरफ वार किया। क्योंकि बाईं तरफ दिल होता है। मेरा इरादा चाकू के आठ इची फल को सीधे उनकी पीठ से दिल मे उतार देने का था। मुझे पता नही मैने कितने वार किये, परन्तु चार-पाच जरूर किये होगे। वैसे शायद पहले वार मे ही छुन्नू बाबू की मृत्यु हो गयी होगी। क्योकि उन्हे पीछे मुडने का भी अवसर नही मिला और वह सीधे फर्श पर लुढक गये। फर्श पर खून ही खून हो गया।

शुरू के एक-दो क्षण ताश खेल रहे लोगो को कुछ पता नही चला। परन्तु जब छुन्नू बाबू फर्श पर लुढके तो सभी चौक पडे। उन्होने पीछे मुड-कर देखा और दहशत से एक ओर कोने मे चले गये। मै खूनभरा चाकू लिये एक क्षण खडा रहा। नौकर पानी लेकर आया। यह दृश्य देखकर गिलास उसके हाथ से छूटकर गिर गया और वह सहमकर पीछे हट गया। फर्श पर रुपयो का ढेर था जो लोगो के चाल चलने से जमा हुए थे। परन्तु किसीका ध्यान उस ओर नही था। मैं चुपचाप पीछे मुडा और दरवाजे की कुडी खोलकर सीढियाँ उतरता हुआ बाहर गली मे और फिर वहाँ से टहलता हुआ सडक पर आ गया। चाकू मेरे हाथ मे था। उसे बन्द करके मैंने जेब मे रखा और सिगरेट निकाल कर जलाने लगा। तभी मैने देखा, मेरे पीछे पीछे वहाँ जुआ खेलने आये अन्य लोग भी बाहर आकर

जल्दी-जल्दी इधर-उधर चले गये। दो-एक तो मेरी बगल से दौडते हुए निकल गये।

मै वहाँ से टहलता हुआ सीधे पुलिस स्टेशन आया, जो थोडी दूर पर ही था। यह पहले से ही मैने तय कर रखा था। वहाँ सभी लोग सो या ऊँघ रहे थे। मैने उन्हे जगा दिया और चाकू निकालकर मुशी जी की मेज़ पर रख दिया।

-मैने खून किया है। मैने कहा।

वह खासा डर गया और तुरन्त दौडकर दारोगा को बुला लाया। उसने आते ही चाकू अपने हाथ मे से लिया और मुझे बैठने को कहा। मैं उसीके सामने कुर्सी पर बैठ गया। तब उसने मेरा बयान लिया। मैने उसे पूरी बात बतायी। तब तक दो कान्स्टेबुल मेरे पीछे आकर खडे हो गये थे। और उन्होने मुझे बाँह से पकड लिया था। शायद जब मुन्शी दारोगा को बुलाने गया था तभी उसने उससे यह प्रबन्ध करने को कह दिया था।

—इन्हे हवालात मे बन्द कर दो। और इनकी तलाशी ले लो। दारोगा ने कहा और उठकर खड़ा हो गया।

मुझे हवालात मे बन्द कर दिया गया। दारोगा शायद छुन्नू बाबू के घर चला गया मौके पर तहकीकात करने। सारे पुलिस-स्टेशन पर खलबली मच गयी।

दूसरे दिन मुझे कोर्ट मे हाज़िर किया गया और मेरा केस चलने लगा। बडे भाई को कैसे पता चला मै नही जानता। हो सकता है, अखबार मे भी निकला हो। जो भी हो, दूसरे या तीसरे दिन वह आये। उन्होने मेरी जमानत की बहुत कोशिश की। परन्तु कोर्ट ने जमानत मजूर नही की।

कोई डेढ साल केस चला। बड़े भाई अक्सर बीच मे आते रहते। एक अच्छा वकील भी उन्होने मेरे लिए कर दिया जो मुझसे दो-तीन बार जेल मे आकर भी मिला। उसने मुझे बहुत समझाया कि मै बयान बदल दूं। और हत्या से इनकार कर दूं। परन्तु मैने साफ मना कर दिया। आज सोचता हूँ शायद मुझे ऐसा ही करना चाहिए था। लेकिन उन दिनो मुझे लगा था यह बहुत बडी कायरता होगी। जो भी हो, मैने कोर्ट मे साफ कबूल किया कि मै जेल से भागा और मैने जान-बूझकर होश-हवास मे हत्या की।

सेशन से मुझे तीन साल की सजा और फासी का हुक्म हुआ। हाई कोर्ट ने भी उसे बरकरार रखा और उसके बाद…… ।

सुबह होनेवाली है।

थोडी ही देर मे शायद जेलर और अन्य अधिकारी आयेगे और मुझे फांसी के लिए ले जाया जायेगा। मैने सुना है, आज तक कोई अपने-आप अपने पैरो चलकर फॉसी के लिए नही गया। भगतसिंह-जैसे कुछ लोगो को छोड़कर। मै कह नही सकता, कोशिश तो यही करूँगा, मै अपने आप उठकर चलूं। खैर……अब होना भी क्या है?

● ●